२२,२०८
CHECKED

ओ३म्

समीक्षाकर

अर्थात्

नवीन सांख्य वेदान्तादि के परस्पर विरुद्ध वादों
का निराकरण और विरोधाभासों का समाधान
संस्कृत तथा देशभाषा में

जिसे

पण्डित श्री प्रभुदयालु माफ़ीदार व इलाक़ेदार
मौज़ा तेरही ज़िला बान्दा ने रचा

और

श्रीस्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित वैदिक
पुस्तक प्रचारक फ़ण्ड द्वारा प्रकाशित हुवा

पुस्तक संख्या २६

आर्य्यसंवत्सर १९७२९४८९९९

पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक "सामवेदभाष्य" व
"वेदप्रकाश" के प्रबन्ध से स्वामियन्त्रालय

मेरठ में

मुद्रित कराया।

५०० प्रति | सा० १।२।९९ | मूल्य ≡)

वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड के सहायतार्थ आई ओषधियां—

(इस का अर्ध मूल्य भारतोद्धारक की सहायता में लगेगा—शीघ्र मंगावें)

(१) कोष्ठवल्लभावटी मू० एक डिब्बी ॥) इस को खाने से कोष्ठ (पेट-मेदा) शुद्ध हो जाता है तथा अफरा, पेट का फूलना, ज्वर, जुरी, तिजारी, वातरक्त मल कोष्ट, गठिया, सिर का दर्द इत्यादि शीघ्र शान्त होता है।

(२) रुधिर परिष्कार वटिका अर्थात् आयुर्वेदीय सालसा मू० २)—खून को साफ़ करती है अशुद्ध पारा और कोई कच्ची धातु खा ली होवे उस के लिये बड़ी लाभकारी है सिरका दर्द वा चक्कर, जोड़ों का दर्द गर्मी अर्थात् आतशक और गठिया को दूर करती है।

(३) इन्द्रवज्र चूर्ण मूल्य ॥=) बीसो प्रमेह तथा वीर्यक्षय के सब प्रकार के रोग को आराम करती है यह एक महात्मा की बताई बड़ी लाभकारी महौषधि है, यदि निरोग मनुष्य भी उसे एक महीने में आठ बार सेवन करे तो स्वप्न दोष कभी न होवे।

(४) प्रसूतारि वटी मूल्य ५) प्रसूता स्त्री के लिये यह संजीवनी है इस से शरीर की दुर्बलता, हाथ पैर व कमर का दर्द आंखो का जलना अन्न का न पचना आदि रोग शान्त हो जाते हैं।

(५) गन्धकवटी मू० ।॥) इस से अग्नि मन्द, पेट का फूलना, वादी से डकार का आना आदि रोग दूर होते हैं पाचन के लिये रामबाण है।

(६) खांसी की गोली ५० का मूल्य ॥) सर्वप्रकार की नई पुरानी खांसी दूर हो जाती है।

(७) त्रिपुर भैरव वटी १) यह मुसाफ़री करने वालों को अवश्य साथ रखनी चाहिये इस के सेवन से कैसा भी ख़राब पानी हो बाधा नहीं करता और हैज़ा कभी पास ही न आवेगा।

(८) दन्त वज्र मञ्जन मू० ।) इस के मलने से मसूड़ों से रक्त निकलना, दांतों का पोला पड़ जाना, मुख से दुर्गन्ध का आना, दांत अथवा डाढ़ का दर्द वा हिलना इत्यादि शीघ्र आराम हो जाता है।

(९) अमृत मंजरी गुटिका १) इस से सर्वप्रकार का नया वा पुराना ज्वर प्लीहाज्वर जुड़ी आदि दूर होते हैं तथा भूख लगती है कुईनेन का दादा है।

(१०) अमृत संजीवनी बूटी ।) हैजे के लिये बड़ी ही उत्तम लाभदायक है यदि उस समय सेवन की जाय तो हैज़ा पास न आवे सर्व महाशय को सदा साथ रखनी चाहिये।

ओ३म् परमात्मने नमः

सत्यंज्ञानाकरंनत्वासमीक्षाकरनामकः । सत्यासत्यप्रदर्शोयग्रन्थोऽयंरच्यतेऽ-
द्भुतः ॥ १ ॥ निर्मीयमाणसूत्रैर्नंनिर्मितंगणनंमया । प्रागतोनिर्मितैश्चास्यक्रियतेनि
श्चयंयथा ॥२॥ कणादन्यायसांख्यानांयोगवेदान्तयोस्तथा । सूत्राणांहिविभागे-
नभाष्याणयुक्तानिभाषया ॥३॥ प्राशस्तपादकंश्लाघ्यं भाष्यं वैशेषिकस्य यत् । कृत-
स्तस्यानुवादश्चग्रन्थावन्यौविनिर्मितौ ॥ ४ ॥ एकोज्ञानप्रकाशाख्यःसमीक्षाकरना-
मकः । द्वितीयोनिर्मितास्त्वेतेग्रन्थाःसर्वेऽत्रमङ्गलकाः ॥ ५ ॥ कश्चिन्माज्ञातुमिच्छेच्चे
द्विशिष्टमितिचिन्तनात् । पूर्वग्रन्थाधिकंस्थानंलिख्यतेऽप्यत्रवर्णनम् ॥६॥ सुस्वरूपः
सुधीःश्रीमान्धर्मात्मामहद्गुणान्वितः । जातोगङ्गाप्रसादोमेग्रन्थकर्तुःपितामहः ॥७॥
गयाप्रसादस्तस्याद्यश्चतुर्षुतनूजेषुयः । अभूत्सजापकोदानीपुराणश्रवणेरतः ॥८॥ द्वि-
तीयोमथुराप्रसादःसप्रतापवान् । लोकोन्नतिप्रयत्नेषुदक्षोव्यवहारेष्वभूत् ॥९॥
प्यारेलालस्तृतीयोऽभूद्वैष्णवेभ्योधनंनिजम् । विप्रेभ्यश्चापिदीनेभ्योददाद्धर्मपर-
स्सदा ॥१०॥ लालान्तोमोहनस्तुर्योऽकरोत्कर्माह्निकंतथा । सपर्य्यांनियतेकालेपु-
राणञ्चाशृणोत्सदा ॥११॥ जातोगयाप्रसादाद्धिमाधवोऽग्रप्रसादयुक् । सच्छीलस्सु-
प्रसिद्धस्सजातौतस्यात्मजावुभौ ॥१२॥ श्रद्धासुशीलान्वितविष्णुभक्तःप्राक्श्याम-
शब्दान्वितसुन्दरोयः । नाम्नाःसमद्धर्मपरोद्वितीयःश्लाघ्योऽनुजस्तस्यसुतीव्रबुद्धिः
॥१३॥ राधेपूर्वस्सगोविन्दःख्यात्यादक्षःसुधैर्यवान् । जातंहार्दंविशिष्टंमेतस्मि-
न्तस्याग्रजेतथा ॥१४॥ तौचापिमय्यप्रणयान्वितौवैसच्छीलवृत्याभवतो*गुरू
माम् । लोकोपकारायनिजप्रसिद्ध्यायौरामकृपौरचितौहिताभ्याम् ॥१५॥ दाना-
दयालुर्धर्मात्माप्यारेलालस्तदात्मजः । एकःकृष्णदयालुश्चद्वितीयोयश्शुभान्गुणान्
॥ १६ ॥ आकृष्णस्तोत्रवान्पद्यैर्विषयास्त्वेननिर्मितैः । दयालोः प्राग्रघुवरस्तृ-
तीयःप्राक्प्रभुस्त्वहम् ॥१७॥ द्वितीयाद्दयाशङ्करस्तत्कनिष्ठोजगन्नाथनामापित-
स्यानुजोऽभूत् । सुनाम्नादञ्जगराजपूर्वःकिशोरस्तथाश्यामपूर्वःकिशोरस्तृतीयात्
॥ १८ ॥ सहायशब्दोबलदेवपूर्वस्तथामहायोहरदेवपूर्वः । इमौसुतौमोहनलाल-
तोद्वौतयोःकनिष्ठस्यसुतौहिज्ञेयौ ॥१९॥ सरयूकेशवयुक्तौप्रसादावितिसुसंज्ञाभ्या-
मुक्तौ । इतिसंक्षेपतउक्तंवंशप्रख्यातयेस्वस्य ॥ २० ॥ नोत्कृष्टिविज्ञापनमात्रहेतुंप्रशं
सनंवैनिजवंशजस्य । कस्याप्यतोयत्कथितंममूलंधर्मस्यमूलंहियतोस्तिसत्यम्

*ताभ्यांपितृव्यत्वसम्बन्धेनैवममगुरुत्वंतदध्यापकत्वेनापि ।

॥ २१ ॥ त्यक्तंमयाऽत्र मुख्यत्वादधिकंवंशवर्णनम् । अथेशंप्रार्थयन्पूर्वैर्ग्रन्थःप्रारभ्यतेऽधुना ॥ २२ ॥

अथ भाषानुवादः

सत्यज्ञानाकर रूप परमात्मा को प्रणाम कर के सत्य असत्य के निर्णय के लिये मैं इस आठवें समीक्षाकरनामक ग्रन्थ को निर्मित करता हूं (बनाता हूं) ॥१॥ यह जो अभी बनाया जाता है इस को बने हुये के समान कल्पना करके (मान कर) इस से पहिले जो ग्रन्थ निर्मित हो गये हैं (बन गये हैं) उन के साथ नीचे के लेख में इस का भी गणन किया जाता है अर्थात् यह भी गिना जाता है ॥२॥ काणाद (वैशेषिक दर्शन) न्याय, साङ्ख्य, तथा योग व वेदान्त इन शास्त्रों के सूत्रों के भाष्य, विभाग से देशभाषा में वर्णन कियेगये हैं अर्थात् इन में से प्रत्येक शास्त्र के सूत्रों का भाष्य पृथक् २ देशभाषा में वर्णन किया गया है ॥ ३ ॥ प्रशस्तपाद ऋषि का बनाया हुआ जो वैशेषिक दर्शन का प्रशंसनीय भाष्य है उस का अनुवाद (तरजुमा) किया है और दो ग्रन्थ और बनाये हैं वह यह हैं ॥ ४ ॥ एक जिस का ज्ञानप्रकाश व दूसरा जिस का समीक्षाकर नाम है, इतने यह सब आठ ग्रन्थ निर्मित हुये (बनाये गये) ॥ ५ ॥ कदाचित् कोई गुणों को विशिष्ट जानने की इच्छा करे अर्थात् विशेषता से मेरे जानने की इच्छा करे इस से विशेष परिचय भी लिखना चाहिये इस विचार से पूर्वोक्त ग्रन्थों से वा इस ग्रन्थ से पूर्व सङ्ख्यात जो ज्ञानप्रकाशग्रन्थ है उस से अधिक अर्थात् उसमें पिता का नाम वासस्थान व नाममात्र वर्णन किये हुये से अधिक इस में (इस ग्रन्थ में) अपनों का अर्थात् वंशसम्बन्धियों का भी वर्णन लिखा जाता है ॥ ६ ॥ सुन्दर स्वरूपवान् सुबुद्धिमान् श्रीमान् धर्मात्मा उत्तम गुणों से युक्त ऐसे गङ्गाप्रसाद नामक मुझ ग्रन्थकर्ता के पितामह हुये ॥ ७ ॥ उन के चार पुत्रों में से पहिले (ज्येष्ठ) गयाप्रसाद हुये वह जापक (परमेश्वर के नाम के जप करने वाले) दान करने वाले और पुराणों के श्रवण में रत हुये ॥८॥ दूसरे मथुराप्रसाद हुये वह प्रतापवान् लोक में उन्नति करने के प्रयत्नों में (संसार में तरक्की करने की तदबीरों में) और व्यवहारों में (लोकव्यवहारों में) प्रवीण हुये ॥९॥ तीसरे प्यारेलाल हुये जो अपने धन को वैष्णवों ब्राह्मणों और दीन जनों को देते हुये सदा धर्मनिष्ठ रहे ॥१०॥ चौथे मोहनलाल हुये उन्होंने सदा नियत काल में सब सांसारिक कामों को किया और ऐसा ही नियत काल में पूजन किया और

पुराण को सदा श्रवण किया ॥११॥ गयाप्रसाद से माधवप्रसाद हुये वह उत्तम शीलवान् अच्छे प्रसिद्ध हुये उन के दो पुत्र हुये ॥ १२॥ एक जिन का श्यामसुन्दर नाम हुआ वह सदा सुशीलयुक्त विष्णुभक्त और सद्धर्मपर हुये और उन के छोटे भाई राधेगोविन्द नामक प्रशंसा के योग्य अच्छे तीव्रबुद्धि (तेज़ अक़्ल) धैर्यवान् प्रवीण हुये उन में और वैसे ही उन के ज्येष्ठ भ्राता में हृदय से मेरा विशेष स्नेह हुआ ॥ १३ व १४ ॥ और वह दोनों भी अतिनम्रतायुक्त उत्तम शील वृत्ति से जैसे गुरु की (बड़े की) सेवा करना चाहिये वैसे ही हमारी सेवा करते हैं और मानते हैं लोक के उपकार के लिये और अपनी प्रसिद्धि के लिये इन दोनों ने एक बाग़ लगाया है, और एक कुवां बनवाया है ॥ १५॥ दान के देने वाले दयावान् धर्मात्मा प्यारेलाल के आत्मज (पुत्र) एक कृष्णदयालु हुये दूसरे जिन्होंने श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के उत्तम गुणों को अपने देशभाषा में बनाये हुए पदों में वर्णन किया है ऐसे रघुवरदयालु हुये और तीसरा प्रभुदयालु मैं हूं ॥१६ व १७ ॥ दूसरे से दयाशङ्कर उस से छोटा जगन्नाथ और उस से भी छोटा भाई ब्रजराजकिशोर यह तीन हुये और तीसरे से श्यामकिशोर हुआ ॥ १८॥ बलदेवसहाय व हरदेवसहाय यह दो पुत्र मोहनलाल के हुये उन में से छोटे के अर्थात् हरदेवसहाय के दो पुत्र हुये ॥१९॥ वह सरयूप्रसाद व केशवप्रसाद इन दो नामों से युक्त हुये । अपने वंश की प्रख्याति के लिये (ज़ाहिर होने के लिये) यह संक्षेप से वंश का वर्णन किया गया ॥२०॥ केवल बड़ाई जनाने के लिये इस में कुछ प्रशंसा (तारीफ़) किसी अपने वंश में उत्पन्न हुये की नहीं है इस से जो कुछ वर्णन किया गया है वह सब सत्य है क्योंकि धर्म का मूल सत्य ही है इस में सत्य ही कहा गया है अत्युक्ति नहीं किया ॥ २१ ॥ इस ग्रन्थ में वंश का वर्णन करना मुख्य नहीं है । इस से अधिक वंश को वर्णन नहीं किया इस से अनन्तर परमेश्वर से यह प्रार्थना करते हुये कि इस ग्रन्थ को निर्विघ्न पूर्णता को प्राप्त करें अब ग्रन्थ का प्रारम्भ किया जाता है ॥ २२ ॥

अत्रवैशेषिकादिदर्शनार्षग्रन्थान्तर्गतविशेषसूत्राणां बहुभिराधुनिकव्याख्याकारैरन्यथाव्याख्यातानामर्थं समीक्ष्य तत्त्वं निर्णीयते, येनविद्याभिलाषिसत्पुरुषाणां हृदयेसत्यार्थोपदेशकाप्तमहर्षिप्रणीतोक्तसूत्राणांयथार्थाशयः प्रकाशिष्यतेआधुनिकतत्तद्भाष्यटीकाकाराश्चपक्षपाततः प्रमादतश्चयत्तेषामयुक्तमसत्यार्थंव्याख्याय धर्मेऽधर्मंविद्यायामविद्यांसंस्थाप्यार्थमनर्थंकृतवन्तस्तद्भङ्क्ष्यतेअतःप्राग्देशभाषा

मात्रज्ञातृभ्यः संस्कृतवाण्यामविशेषाधिकारिभ्योवाआर्य्यावर्त्तनिवासिविद्या-
भिलाषिपुरुषेभ्योवैशेषिकाद्युक्तदर्शनानां भाष्याणि देशभाषयामयानिर्मितान्य-
तोऽस्मिन् तत्तद्विशेषसूत्राणामेवव्याख्यानंकरिष्यते येषामाधुनिकटीकाऽथभाष्य-
कारैःकृतं व्याख्यानञ्चतत्पाठकान्त्वविद्याभ्रमावरणजन्यान्धकारएवाक्षिपतियेनते
विद्याप्रकाशंसत्यार्थस्वरूपञ्च नोपलभन्तेतस्मात्सर्वैर्विद्याभिलाषिविद्भिः सत्पु-
रुषैराप्तर्षिनिर्मितानां वाप्तत्वधर्मयुक्तनिर्मितग्रन्थानां तत्कृतव्याख्यानभाष्या-
णामेववापठनपाठनाभ्यासः कर्त्तव्यः नाधुनिकपक्षपातग्रस्तहृदयपुरुषनिर्मितग्र-
न्थानां भाष्याणांवापठनंपाठनञ्चशोभनमस्तिएतद्धस्यमाणव्याख्यानात्विचार-
तश्चनिश्चयपदंयास्यति। यद्यप्युक्तभाष्येषुकृत्स्नंव्याख्यानंकृतमस्तितथाप्यत्रपृथग्-
व्याख्यानस्यै तत्प्रयोजनंपूर्वोक्तदर्शनेषुसमीक्षितविशेषस्थलोक्तविषयाणां ता-
त्त्विकज्ञानस्यात्रैकत्रोपलब्धिर्भवेत् अनेकग्रन्थाध्ययनपाठविचारैर्वाकाङ्क्षित-
श्रमाधिक्यं तत्र भाव्यालसश्चनावगच्छेत। अल्पपरिश्रमेयथार्थज्ञानलाभोविद्या-
भिलाषिणःप्राप्नुयाच्चेति । यद्यत्रकुत्रचित्किञ्चिद्दोषयुक्तंप्रतीयेततद्विद्वज्जनैर्विमा-
र्जनीयमिति मत्प्रार्थितंवेद्यमिति । तत्रश्रीमद्वात्स्यायनर्षिकृतन्यायभाष्यस्या-
शयं प्रगृह्यश्रीमद्व्यासमहर्षिप्रणीतयोगदर्शनभाष्यमनुसृत्यन्याययोगदर्शनभाष्ये-
निर्मिते तयोरार्षैक्यमनुगतत्वाद्विचारतोप्यनवद्यत्वात्समीक्षात्रनकृतेतिइतरे-
षामार्षपराचीनभाष्योपलब्ध्यभावे तेषाञ्चार्षभाष्यानुसारतोयानिपूर्वमहाशया-
चार्य्यैर्भाष्याणिनिर्मितानि तदाशयसाहाय्यंस्वीकृत्यस्वविचारतोऽपिभाष्याणि-
निर्मायार्षमतविरुद्धव्याख्यातृणामाधुनिकवृत्तिभाष्यकाराणांव्याख्यानांसमीक्षात्र
प्रारभ्यते ॥

अथास्य भाषानुवादः

इस में वैशेषिक आदि दर्शन आर्ष (ऋषिप्रणीत) ग्रन्थों के अन्तर्गत विशेष सूत्र जो बहुत आधुनिक व्याख्याकारों से अन्यथा व्याख्यान किये गये हैं उन के अर्थ की समीक्षा करिके तत्व का निर्णय किया जाता है जिस से विद्याभिलाषी सत्पुरुषों के हृदय में सत्य अर्थ के उपदेश करने वाले आप्त महर्षियों के बनाये हुये उक्त सूत्रों का यथार्थ आशय प्रकाशित होगा, आधुनिक उन के भाष्य टीकाकारों ने पक्षपात से वा प्रमाद से जो उन के अयुक्त व असत्य अर्थ को व्याख्यान कर के अर्थ को अनर्थ किया है वह प्रकट होगा। इस से पहिले देशभाषामात्र जानने वाले संस्कृत वाणी में विशेष अधिकार को न प्राप्त हुये आर्य्यावर्त्त देशवासी विद्याभिलाषी पुरुषों के लिये वैशेषिक

आदि दर्शनों के भाष्य देश भाषा में मैं ने निर्मित किये हैं इस से इस में उक्त दर्शनों के उन विशेष सूत्रमात्रों का व्याख्यान किया जायगा जिन का आधुनिक टीका अथवा भाष्यकारों से किया हुआ व्याख्यान अपने पढ़ने वालों को अविद्या व भ्रमरूप आवरण से उत्पन्न हुये अन्धकार में डालता वा फेंकता है जिस से वह विद्यारूप प्रकाश को और सत्य अर्थ स्वरूप को नहीं प्राप्त होते वा नहीं जानते हैं। इस से सब विद्याभिलाषी विद्वान् सत्पुरुषों को आप्त ऋषियों के बनाये हुये अथवा आप्तधर्मयुक्त सत्पुरुषों के निर्मित ग्रन्थ भाष्य व व्याख्यानों के पठन पाठन का अभ्यास करना चाहिये, जिन का हृदय पक्षपात से ग्रस्त है ऐसे आधुनिक पुरुषों से निर्मित ग्रन्थ व भाष्यों का पढ़ना पढ़ाना अच्छा नहीं है यह वक्ष्यमाण व्याख्यान व विचार से निश्चय को प्राप्त होगा। यद्यपि उक्तभाष्यों में सब व्याख्यान कर दिया गया है तथापि यहां पृथक् व्याख्यान करने का यह प्रयोजन है कि उक्त दर्शनों के विशेष स्थलों को जिन की समीक्षा की गयी है उन के तात्त्विक ज्ञान की यहां एकत्र (एक जगह) प्राप्ति होवे। जिस से अनेक ग्रन्थों के पढ़ने व विचारने में जो अधिक श्रम आकाङ्क्षित है और जो उस में आलस्य होना सम्भव है वह न प्राप्त होवे थोड़े परिश्रम में यथार्थ ज्ञान विद्याभिलाषियों को प्राप्त होवे। यदि इस में कहीं कुछ दोष होना संघटित होवे अर्थात् कुछ दोष हो जावे तो वह विद्वज्जनों से विमार्जनीय है (शुद्ध करने योग्य है) अर्थात् विद्वान् जन उस को शुद्ध कर लेवें यह मेरी प्रार्थना है। श्रीमान् वात्स्यायन ऋषि के बनाये हुये न्याय के भाष्य का आशय ग्रहण करके और श्रीमान् महर्षि व्यास जी के बनाये हुये योगदर्शन के भाष्य के अनुसार पूर्वोक्त न्याय व योगदर्शन के भाष्य बनाये गये हैं वह ऋषियों के कहे हुये भाष्य के अनुरूप होने से और विचार से भी उन के निर्दोष पाये जाने से उन की समीक्षा यहां नहीं की गयी। अन्य शेष रहे हुयों के परार्चीन आर्ष भाष्यों के न मिलने पर उन के भाष्य जो आर्ष भाष्यों के अनुसार पूर्व महाशय आचार्यों ने निर्मित कियेथे उन के आशय की सहायता लेकर और अपने विचार से भी भाष्यों को निर्मित करके आर्ष मत के विरुद्ध व्याख्यान करने वाले आधुनिक भाष्यकारों की व्याख्याओं की समीक्षा का यहां आरम्भ किया जाता है ॥

तर्कसङ्ग्रहमुक्तावल्यादिनिर्मातृभिराधुनिकग्रन्थकारैर्वैशेषिकन्यायविषयप्रतिपादकैस्स्वग्रन्थेषु—

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्त पदार्थाः

एवंवर्णितास्तत्रपदार्थसङ्ख्यानेसप्तमोऽभावस्स्वकल्पनयाऽनुकरणतयावा तैः सन्निवेशितः । यतोवैशेषिकदर्शनेप्रथमाध्यायस्यप्रथमाह्निकेचतुर्थसूत्रेमहर्षिकणादेनषडेवपदार्थाःएवंसङ्ख्याताः—

"धर्मविशेषप्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानांपदार्थानांसाधर्म्यवैधर्म्याभ्यांतत्वज्ञानान्निःश्रेयसम्"

अस्य षट्पदार्थसङ्ख्यानस्य श्रीमहर्षिकपिलदेवप्रणीतसाङ्ख्यदर्शनसूत्रेणापिप्रामाण्यमवगम्यते तदिदंसूत्रम्—

न वयं षट्पदार्थवादिनोवैशेषिकादिवत्

महात्मभिः सूत्रकारैःसाधर्म्यवैधर्म्यसम्बन्धिषट्पदार्थवर्णनानन्तरंभावाभावौपृथक्वर्णितौस्तः । तयोःपृथक्वर्णनस्यायंहेतुरनुमीयतेउक्तेषुषट्पदार्थेषुकेचिद्गुणापेक्षयासाधर्म्यंकेचिद्गुणापेक्षयावैधर्म्यञ्चावगच्छन्ति । तेषाञ्चसामान्यविशेषोभयरूपत्वमवधार्य्यते भावस्तुसामान्यसाधर्म्यमात्रत्वेनविद्यते । नतद्विशेषत्वमनुभूयते । अभावश्चतद्वैधर्म्यरूपत्वेनैवनिश्चीयते । इत्यादिहेतुभ्यस्तद्विलक्षणत्वेन निश्चितौभावाभावौपृथक्त्वेननिरूपितौ । सामान्यतस्तूक्तसूत्रेतावप्युपदिष्टाविति मन्तव्यौ । यतःसाधर्म्यशब्देनभावोवैधर्म्यशब्देनतदभावश्चविज्ञापितः । एवमाशयोनिश्चेतव्यः सुविचारपरैः । अतो यदि "सप्तपदार्थाः" एवन्नलिखित्वा तेषुभावमपिसंयोज्य'ष्टौपदार्थाःएवमाधुनिका अलेखिष्यन्ततर्हितन्नखलूत्तमोऽभविष्यत् । यतोभावएव बजप्राप्तौसत्यामभावइत्युच्यते न भावं विनाऽभावस्य प्रत्ययः सम्भवति । ज्ञातधर्मधर्मिणोर्निषेधएवाभावइतिव्यवहारोलोकेदृश्यते विचारेणापीदमित्थञ्चनिश्चीयते मान्यथेति ॥

अथ भाषानुवादः ॥

तर्कसङ्ग्रह मुक्तावली आदि के बनाने वाले आधुनिक ग्रन्थकार वैशेषिक व न्याय के विषय के प्रतिपादन करने वालों ने अपने ग्रन्थों में द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय और अभाव सात पदार्थ हैं ऐसा वर्णन किया है। इन पदार्थों के गिनने में सातवां अभाव कोई अपनी कल्पना से और अन्य के ग्रन्थ में लेख देखकर वैसे ही आप भी लिख दिया है। क्योंकि वैशेषिकदर्शन के प्रथम अध्याय प्रथम आह्निक में चौथे सूत्र में महर्षि कणाद ने छः ही पदार्थ इस प्रकार से वर्णन किये हैं—

धर्मविशेषप्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥४॥

अर्थ—द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय पदार्थों के साधर्म्य व वैधर्म्य द्वारा धर्मविशेष से उत्पन्न हुवे ज्ञान से मोक्ष होता है ॥ ४ ॥ इन छः पदार्थ की सङ्ख्या का श्रीमहर्षि कपिलदेव के कहे हुये साङ्ख्यदर्शन के सूत्र से भी प्रमाण पाया जाताहै वह सूत्र यह है—

न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत् ॥

अर्थ—हम वैशेषिक आदि के समान छः पदार्थों के वादी नहीं हैं। महात्मा सूत्रकार ने साधर्म्य वैधर्म्य सम्बन्धी (समधर्म व विरुद्धधर्म रखने वाले) छः पदार्थों के वर्णन करने के पश्चात् भाव और अभाव को पृथक् वर्णन किया है इन दोनों के पृथक् वर्णन करने का हेतु यह अनुमान किया जाता है कि उक्त छः पदार्थों में कुछ गुणों की अपेक्षा साधर्म्य (समधर्म होना) और कुछ की अपेक्षा वैधर्म्य (विरुद्ध धर्म होना) ज्ञात होता है। उन का सामान्य व विशेष दोनों रूप होना निश्चय किया जाता है परन्तु भाव का अस्तित्व (होना) सामान्य साधर्म्यमात्र से विदित होता है उस का विशेष होना बुद्धिगत नहीं होता और अभाव उस के विरुद्धधर्म होना रूप ही निश्चय किया जाता है इत्यादि हेतुओं से उन षट् पदार्थों से विलक्षण होना निश्चित हुआ। अत यह दो पृथक् निरूपण किये गये गये हैं। सामान्य से तो उक्त सूत्र में यह भी दोनों उपदेश किये गये हैं ऐसा समझना चाहिये क्योंकि साधर्म्य शब्द से भाव और वैधर्म्य शब्द से उस का अभाव विज्ञापित किया गया है। ऐसा आशय अच्छे विचार करने वालों से निश्चय करने योग्य है। इस से "सप्त पदार्थ हैं।,, ऐसा न लिखकर भाव को भी मिलाकर जो आधुनिक उक्त ग्रन्थकार "आठ पदार्थ हैं,, ऐसा लिखते तो उन का लेख उत्तम होता क्योंकि भाव ही में नञ् अर्थात् नहीं के अर्थवाचक शब्द प्राप्त होने से "अभाव,, ऐसा कहा जाता है। भाव के विना अभाव का बोध होना सम्भव नहीं है। जाने हुये धर्म व धर्मी के प्रतिषेध ही में अभाव इस शब्द का व्यवहार लोक में देखा व सुना जाता है विचार से भी यह ऐसे ही है यही निश्चय किया जाता है अन्यथा होना ज्ञात नहीं होता ॥

अत्राधुनिकास्तद्ग्रन्थाध्यापकास्तदध्येतारश्चैवमाहुः। षट्पदार्थाभावरूपा

एव । अर्थात्भावस्यैवविभागरूपाअतोनभावस्य पृथक्ग्रहणमाकाङ्क्षितमितिम-
त्वाऽभावमात्रस्यैवाऽधिकग्रहणमावश्यकं विमृश्य सप्तमोऽभावएव ग्रन्थकारैराधि-
क्येनपठितः इतिसिद्धान्तः । नैवंवाच्यंभ्रान्तिमूलकमेवेदमुत्तरं यतोमहात्मभिःसू-
त्रकारैरयंभावोद्रव्यादीनामेकस्मिन्नप्यन्तर्गतत्वेनपरिसङ्ख्यानयोग्योनास्तीति लक्ष-
णतोहेतुतश्चनिम्नलिखितसूत्रैर्निरूप्य, भिन्नःपृथक्त्वेनस्थापितः ।

भावोऽनुवृत्तेरेवहेतुत्वात्सामान्यमेव ॥ अ० १ आह्निक २ सूत्र ४

अस्य व्याख्यानम् ।

अनुवृत्तिप्रत्ययस्यकारणंसामान्यमितिसामान्यस्यलक्षणम्भावःसत्ताअनुवृत्तेरेव कोऽर्थः अनुवृत्तिप्रत्ययस्यैव । अनुवृत्तिःसद्रूपस्याधिक्येनव्याप्तिरूपवृत्तिःतस्याःप्रत्ययस्यैवइत्यर्थःभावोऽनुवृत्तिप्रत्ययस्यैवहेतुर्भवति तस्मात्सामान्यमेवास्ति । अनुवृत्तेरेवहेत्वत्रएवकारेणव्यावृत्तिप्रत्ययस्यार्थाद्व्यावृत्तिरूपप्रत्ययस्य व्यवच्छेदःसत्तापिद्रव्यादिवत्विशेषादिवज्जातिरूपवृत्तिरूपप्रत्ययस्य (बुद्धेः) हेतुर्भवत्यतोभावःसामान्यमेवभवति । नकदापिव्यावृत्तिप्रत्ययहेतुर्विशेषत्वंप्राप्नोतीत्यर्थः ॥

भावार्थः

इस में अर्थात् ऐसी शंका करने में इस के उत्तर में आधुनिक ग्रन्थकार उन के ग्रन्थों के पढ़ाने वाले व पढ़ने वाले ऐसा कहते हैं कि छः पदार्थ भावरूप ही हैं अर्थात् भाव ही के विभागरूप हैं इस मे भाव का पृथक् ग्रहण करना आकांक्षित नहीं है ऐसा मान कर अभावमात्र का ही अधिक ग्रहण आवश्यक विचार कर सातवां अभावमात्र ही ग्रन्थकारों ने अधिक बढ़ा कर कहा है यह सिद्धान्त है । ऐसा कहना युक्त नहीं है ऐसा उत्तर भ्रान्ति से कहा जाता है क्योंकि महात्मा सूत्रकार ही लक्षण से और हेतु से ऐसा नीचे लिखे हुये सूत्रों मे निरूपण करके कि छः पदार्थों में से किसी एक में भी अन्तर्गत मान कर भाव संख्या करने वा मानने योग्य नहीं है उन से भाव को भिन्न स्थापित किया है ॥

भावोऽनुवृत्तेरेवहेतुत्वात्सामान्यमेव

अर्थ–अनुवृत्ति ही का हेतु होने से भाव सामान्य ही है । अध्याय १ आह्निक २ सू० ४

अनुवृत्ति प्रत्यय का (एक समान ज्ञान होने का) जो कारण हो उस को

सामान्य कहते हैं यह सामान्य का लक्षण है। भाव का अर्थ सत्ता (होना) है "अनुवृत्ति ही का" ऐसा जो सूत्र में कहा है उस का अर्थ "अनुवृत्ति प्रत्यय ही का" ऐसा समझना चाहिये एक सदृश वृत्ति की अधिक देश में व्याप्ति होना अनुवृत्ति है उस के "प्रत्यय ही का" यह " अनुवृत्ति का " कहने का तात्पर्य है अर्थात् अनुवृत्तिप्रत्यय शब्द के स्थान में अनुवृत्तिमात्र शब्द समझना चाहिये अनुवृत्तिप्रत्यय ही का हेतु होता है इतने ही कहने से व्यावृत्तिप्रत्यय का वा अल्प देश में प्रवृत्ति होने के प्रत्यय (बोध) का निवारण है अर्थात् द्रव्य आदि के समान विशेष आदि के समान भाव कभी अल्पदेशवृत्ति होने के प्रत्यय अथवा व्यावृत्तिप्रत्यय का (भेदबुद्धि होने का) हेतु नहीं होता है इस से भाव सामान्य ही होता है कभी व्यावृत्तिबुद्धि के हेतु रूप विशेषता को नहीं प्राप्त होता है यह आशय है ॥

द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च ॥

अ० १ आ० २ सू० ५

चकारः पृथिवीत्वादीनि द्रव्यगतजातीः रूपत्वादीनि गुणगतजातीः उत्क्षेपणादीनि कर्मगतजातीःसमुच्चिनोति। द्रव्यत्वेनद्रव्यव्यवच्छेदकत्वेनपृथिव्यादिद्रव्याणि तथागुणत्वेनरूपादयोगुणाः कर्मत्वेनउत्क्षेपणादीनिकर्माणि सामान्यानिविशेषाश्चभवन्ति। भावस्तुपूर्वोक्तप्रकारेणविशेषोनभवति अतएभ्योभिन्नोभावइतिवक्ष्यमाणनिगमनात्प्रागत्रहेतुस्थापनम् ॥

अथास्य भाषानुवादः ॥

द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्व आदि सामान्य और विशेष होते हैं अ० १ आ० २ सू० ५

इस सूत्र के अर्थ में सूत्र में जो चकार है उस का अर्थ आशय से आदि रक्खा गया है क्योंकि चकार सूत्र में समुच्चयार्थसूचक है अर्थात् पृथिवीत्व द्रव्य में प्राप्त जातियों को रूपत्व आदि गुण में प्राप्त जातियों को उत्क्षेपण आदि कर्म में प्राप्त जातियों को समुच्चित करना (समेटना) सूचित करता है अर्थात् द्रव्यत्व आदि के साथ उक्त पृथिवीत्वादि को भी ग्रहण करना चाहिये यह सूचित करता है। द्रव्यत्व से अर्थात् द्रव्यव्यवच्छेदक होने से (द्रव्य से भिन्न वस्तुओं से भेद जनाने वाले धर्म विशेषता से) पृथिवी आदि द्रव्य तथा गुणत्व से रूप आदि गुण, कर्मत्व से उत्क्षेपण आदि कर्म सामान्य और विशेष होते हैं। परन्तु पूर्वोक्त प्रकार से भाव विशेष नहीं होता है इस से इन द्रव्यादिकों से

भाव भिन्न है। आगे जो हेतुपूर्वक सिद्धान्त निश्चय किया जायगा उस से पहिले यहां यह हेतु का स्थापन है ॥

अन्यत्रान्त्येभ्योविशेषभ्यः अ० १ आ० २ सू० ६ ॥

अन्त्याविशेषानित्यद्रव्यवृत्तयोयेऽभिहिताः तान्वर्जयित्वा सामान्यविशेषाभिधानमित्यर्थः उत्पत्तिविनाशयोरन्तेऽवसानेभवन्तीत्यन्त्याविशेषाः तेहि विशेषाएवव्यावृत्तिबुद्धिहेतवोनतुसामान्यरूपाअपीति ॥

अथ भाषानुवादः ॥

अन्त्य विशेषों से भिन्न में। अ० १ आ२ सू० ६

यह सामान्य व विशेष होने का कथन अन्त्य विशेष जो है (अन्त में रहे वा होने वाले जो विशेष हैं) उन से भिन्न में है अर्थात् उत्पत्ति व विनाश के क्रम के अन्त में अर्थात् प्रत्यय में जो रहते हैं वह अन्त विशेष हैं वह व्यावृत्तिबुद्धि के हेतु विशेष विशेष ही हैं वह सामान्य रूप भी नहीं होते ॥६॥

सदिति यतोद्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता ॥ अ० १ आ० २ सू० ७

यतःसत्कोऽर्थः अस्तिइति द्रव्यगुणकर्मसुप्रत्ययोभवति अर्थात्द्रव्यमस्ति गुणोऽस्ति कर्मास्ति एवंद्रव्यादीनामस्तित्वप्रत्ययोभवति सा सत्ता भावशब्दवाच्यः पदार्थः ॥

अथ भाषानुवादः ॥

जिस से द्रव्य गुण कर्मों में "है" ऐसा ज्ञान होता है वह सत्ता है अ० १ आ० २ सू० ७

यह द्रव्य है यह गुण है यह कर्म है इस प्रकार से द्रव्य आदि के होने का ज्ञान जिस से होता है वह सत्ता (भाव) शब्द से वाच्य पदार्थ है ॥

द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता ॥ अ० १ आ० २ सू ८

क्रियागुणवत्समवायिकारणमितिद्रव्यलक्षणम् अ० १ आ० २ सू १५ द्रव्याश्रय्यगुणवान्संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्षइतिगुणलक्षणम् सू० १६ एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमितिकर्मलक्षणम्। एतल्लक्षणलक्षितेभ्योद्रव्यगुणकर्मभ्योर्थान्तरं सत्ता न द्रव्यादिरूपा। ननुद्रव्यगुणकर्मभ्यः पृथग्भावेनसत्तानानुभूयते, ऽतोद्रव्याद्यन्यतमसेवसत्ता। यतोहियद्भिन्नंभवति तत्ततोभेदेनानुभूयते, यथाघटः पटात्। नचसत्तातेभ्योभेदेनानुभूयतेइतितदात्मिकैवेत्यतआह-द्रव्यादयोऽननुमताःसत्तावानुगता। तथाचाऽनुगतत्वाननुगतत्वलक्षणविरुद्धधर्माध्यासेनते-

भ्योभेदस्यसिद्धत्वादर्थान्तरं सत्ता ॥

अथ भाषानुवादः ॥

जिस में क्रिया व गुण हों और जो समवायि कारण हो वह द्रव्य है यह द्रव्य का लक्षण है । द्रव्य में आश्रित हो गुणरहित हो संयोग व विभागों से कारण न हो और अपेक्षित न हो वह गुण है यह गुण का लक्षण है । एक ही द्रव्य में हो गुणरहित हो संयोग विभागों में साधारण ही कारण हो वह कर्म है यह कर्म का लक्षण है । ऐसे लक्षणयुक्त जो द्रव्य गुण कर्म हैं उन से सत्ता भिन्न पदार्थ है द्रव्य आदि रूप ही नहीं है । जो यह शङ्का की जावै कि द्रव्य गुण कर्मों से सत्ता का (भाव का) भिन्न रूप होना ज्ञात नहीं होता इस से द्रव्य आदि रूप ही है क्योंकि जो जिस से भिन्न होता है वह उस से भेद सहित वा भिन्न रूप से विदित होता है अर्थात् भिन्न ज्ञात होता है जैसे पट से घट । सत्ता द्रव्य आदि से भिन्न ज्ञात नहीं होती इस से द्रव्य आदि रूप ही है । इस के उत्तर में यह कहा है कि द्रव्य आदि से सत्ता भिन्न है अर्थात् द्रव्य आदि अननुगत हैं अर्थात् सर्वत्र सामान्य रूप से (एक ही सदृश) ज्ञात नहीं होते और सत्ता अनुगत है अर्थात् सर्वत्र एक ही समान रूप से ज्ञात होती है अनुगत होने व अनुगत न होने रूप विरुद्ध धर्म के अध्यास से द्रव्यादिकों से भेद सिद्ध होने से सत्ता उन से भिन्न है ॥

गुणकर्मसु च भावान्न कर्म न गुणः ९ अ० १ आ० २

नगुणोनकर्मेतिवक्तव्येऽत्ययेनाभिधानंनद्रव्यत्वमित्यपिसूचयति । नहि कर्मकर्मसुवर्ततेनवागुणोगुणेषुनवाद्रव्यंगुणेकर्मणिवा,सत्ता तु गुणेकर्मणिचवर्तते तेनद्रव्यगुणकर्मवैधर्म्यात्तेभ्योभिन्नैव सत्ता ॥

अथ भाषानुवादः ॥

गुण कर्मों में होने से न कर्म है न गुण है ॥९॥

कर्मों में कर्म नहीं होता और न गुणों में गुण होता है और गुणों व कर्म में द्रव्य नहीं होता, सत्ता अर्थात् भाव गुण में व कर्म में दोनों में होता है इस से द्रव्य गुण कर्मों के वैधर्म्य से उन से सत्ता भिन्न ही है ॥ ९ ॥

सामान्यविशेषाभावेन च ॥ १० ॥

पूर्वोक्ताःद्रव्यादयः सामान्याविशेषाश्चभवन्त्यतस्तेषुसामान्यविशेषभावो-

विद्यते, सत्तायाः सामान्यमात्ररूपत्वात्सामान्यविशेषयोश्चसापेक्षवाच्यत्वात्त-स्यां विशेषाभावेसामान्यस्याप्यव्यवहारत्वकल्पनया न सामान्यविशेषभावः । तेन सामान्यविशेषाभावेनापिद्रव्यादिभ्योवैधर्म्यात्तेभ्योभिन्नैव सत्ता ॥१०॥

अथ भाषानुवादः ॥

सामान्य व विशेष के अभाव से भी १० ॥

पूर्वोक्तद्रव्यादिक सामान्य और विशेष भी होते हैं इस से उन में सामान्य व विशेष का होना विद्यमान है । सत्ता का सामान्यमात्र रूप होने से सामान्य व विशेष रूप नहीं होता अर्थात् सामान्य व विशेष दोनों एक दूसरे की अपेक्षा से वाच्य होने से विशेष के अभाव में सामान्य के व्यवहार की भी कल्पना न हो सकने से दोनों का अभाव है । इस से सामान्य व विशेष के अभाव से भी द्रव्यादिकों के वैधर्म्य से उन से सत्ता भिन्न ही है ॥१०॥

अनेकद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यत्वमुक्तम् ॥११॥

द्रव्यत्वमपिन द्रव्याद्यात्मकमित्याह । अनेकद्रव्यत्वंसमवेतत्वसम्बन्धेन नित्यत्वंतुसामान्यत्वादेवप्राप्तं तथाचद्रव्यत्वमनेकद्रव्यसमवेतत्वेन नित्यत्वेन च द्रव्यादिभिन्नतयासत्तावदेवोक्तंव्याख्यातंज्ञातव्यमित्यभिप्रायः ॥११॥

अथ भाषानुवादः ॥

अनेक द्रव्यवान् होने से द्रव्यत्वकहा गया समझना चाहिये ॥११॥

द्रव्यत्व (द्रव्य का भाव) भी द्रव्यात्मक नहीं है यह विज्ञापन के लिये यह कहा है अनेक द्रव्यवान् होने से इत्यादि समवेतत्व सम्बन्ध से (नित्यसम्बन्धयुक्त होने के सम्बन्ध से) नित्यता तो सामान्य ही के समान प्राप्त है ऐसा होने में अनेक द्रव्यों के साथ सम्बन्धयुक्त होने और नित्य होने से द्रव्यत्व को भी सत्ता के समान द्रव्य आदि से भिन्न होना व्याख्यात समझना चाहिये११

सामान्यविशेषाभावेन च ॥१२॥

यथाद्रव्याणिसामान्यविशेषाःस्युरेवंद्रव्यत्वंनभवति । यदिद्रव्यत्वमपिद्रव्यात्मिकैवस्यात् तदातस्यांपृथिवीत्वजलत्वतेजस्त्वादयःसामान्यविशेषाःस्युः, न तस्यांपृथिवीत्वादयोभवन्त्यतोनद्रव्यात्मकंद्रव्यत्वं तथागुणाद्यात्मकमपिन इतोऽपिसत्तावदेवज्ञेयमिति ॥१२॥

अथ भाषानुवादः ॥

सामान्य व विशेष के अभाव से भी ॥१२॥

जैसे द्रव्य सामान्य व विशेष होते हैं ऐसा द्रव्यत्व नहीं होता। जो द्रव्यत्व जाति द्रव्यात्मक ही होती तौ उस में पृथिवीत्व जलत्व तेजस्त्व आदि सामान्य व विशेष रूप से होते परन्तु उस में पृथिवीत्व आदि नहीं होते इस से द्रव्यत्व द्रव्यात्मक नहीं है। ऐसा ही गुण आदि आत्मक भी नहीं है इस से भी सत्ता ही के समान ज्ञातव्य है ॥१२॥

तथागुणेषुभावाद्गुणत्वमुक्तम् ॥१३॥

तथाद्रव्यवत्गुणत्वमपिगुणेषुभावान्नगुणात्मकमर्थात्गुणोगुणेषु न भवति इतिगुणलक्षणेपूर्वमेवप्रतिपादितं गुणत्वंगुणेषु भवत्यतोगुणवैधर्म्याद्गुणत्वंनगुणात्मकंसत्तावत्ततोभिन्नमेवेत्यर्थः ॥१३॥

भाषानुवादः ॥

ऐसे ही गुणों में होने से गुणत्व कहा गया समझना चाहिये ॥१३॥

ऐसे ही द्रव्यत्व के समान गुणत्व भी गुणों में होने से गुणात्मक नहीं है अर्थात् गुण, गुण व गुणों में नहीं होता यह गुण के लक्षण में पूर्व ही कहा गया है, गुणत्व गुण में होता है इस गुण के वैधर्म्य से गुणत्व गुणात्मक नहीं है, सत्ता के समान उस से भिन्न ही है ॥१३॥

सामान्यविशेषाभावेन च ॥१४॥

भेदकान्तरमाह। यदि गुणेभ्योगुणत्वमतिरिक्तंनस्याद्गुणवत्सामान्यविशेषरूपंस्यात् नैवंभवत्यतःसामान्यविशेषाभावेनगुणत्वंगुणेभ्योऽतिरिक्तमेवाऽस्ति अनेनैवहेतुनाद्रव्यकर्मभ्यामपिभिन्नमितिराद्धान्तः ॥१४॥

भाषानुवादः ॥

सामान्य व विशेष के अभाव से भी ॥१४॥

जो गुणत्व गुण से भिन्न न होता तौ गुणों के समान सामान्य व विशेष रूप होता। परन्तु ऐसा नहीं होता। सामान्य व विशेष न होने से गुणत्व गुणों से भिन्न ही है इसी हेतु से द्रव्य व कर्म से भी भिन्न है यह सिद्धान्त है ॥१४॥

कर्मसु भावात्कर्मत्वमुक्तम् ॥१५॥

कर्मकर्मसुनभवति तथाद्रव्यगुणावपिकर्मसुनभवतः कर्मत्वंकर्मसुभवत्यतः कर्मत्वमपिसत्तावद्द्रव्यगुणकर्मभ्योभिन्नमुक्तंव्याख्यातंज्ञातव्यमिति ॥१५॥

अस्य भाषानुवादः ॥

कर्मों में होने से कर्मत्व उक्त (कहा गया) समझना चाहिये ॥१५॥

कर्मो में कर्म नहीं होता और द्रव्य गुण भी नहीं होते कर्मत्व कर्म में होने से सत्ता के समान कर्म से व द्रव्य गुण से भिन्न कहा गया अर्थात् व्याख्यान किया गया मानना चाहिये ॥१५॥

सामान्यविशेषाभावेन च ॥१६॥

कर्मसामान्यविशेषरूपत्वेनभवतिनैवंकर्मत्व,मनेनसामान्यविशेषाभावेनापिकर्मत्वंकर्मणोभिन्न,मनेनैवहेतुनाद्रव्यगुणाभ्यामपिभिन्नमेव । इयमेकाकाराचतुस्सूत्री सत्ता द्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वानांचतसृणांजातीनां द्रव्यगुणकर्मभेदप्रतिपादनाय एकप्रकरणेनोक्तेत्यवधेयम् ॥१६॥

अथ भाषानुवादः ॥

सामान्य व विशेष के अभाव से भी ॥१६॥

कर्म सामान्य व विशेष रूप से होता है, कर्मत्व ऐसा नहीं होता । इस से सामान्य व विशेष के अभाव से भी कर्मत्व कर्म से भिन्न है । इसी हेतु से द्रव्य गुणों से भी भिन्न ही है सत्ता द्रव्यत्व गुणत्व व कर्मत्व चारों जातियों का द्रव्य गुण कर्मों से भिन्न होना प्रतिपादन करने के लिये चतुस्सूत्री को एक प्रकार से वर्णन किया है ॥१६॥

सदिति लिङ्गविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैको भावः ॥१७॥

सदित्याकारकंज्ञानंशब्दप्रयोगोवासत्तायालिङ्गं, तच्चद्रव्यगुणकर्मसुसमानमविशिष्टं, तस्माल्लिङ्गाविशेषाद्भावःसत्ता एकैवतेषुवर्त्तते । अन्यथाद्रव्यत्वादिभिस्तुल्यव्यक्तिकतयासत्तावानस्यात्तानिवानस्युः विशेषलिङ्गाभावाच्चेतिविशेषोभेदस्तत्रयल्लिङ्गमनुमानंतदभावाच्चनभेदइत्यर्थः । भवतिहिसएवायंदीपइत्यनुगमस्तथाविशेषलिङ्गं दीर्घत्वह्रस्वत्वादिपरिमाणभेदस्तथात्रविशेषलिङ्गन्नास्तीतिभावः । एवंसूत्रकारेणप्रतिपादनाद्विचारतोपिभावस्यद्रव्यादिभ्यः पृथक्त्वस्यैकत्वस्यचसिद्धेःषट्पदार्थाःभावरूपाएवेति कथनंसर्वथाऽयुक्तं कणादमहर्षेर्मतविरुद्धमेवातोऽमन्तव्यमप्रमाणरूपञ्चेत्यवधेयम् । अतोभावोऽष्टमोमन्तव्योवाषष्ठेपदार्थोउक्तप्रकारेणग्राह्याः भावाभावौतद्विलक्षणत्वेनसूत्रकारोक्तरीत्यापृथक्त्वेनैवव्याख्येयौ । इति पदार्थवर्णने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ भाषानुवादः ॥

"है" इस लिङ्ग (लक्षण) के अविशेष (सामान्य) होने से और लिङ्ग (चिह्न वा लक्षण) विशेष न होने से भाव एक ही है ॥ १७ ॥

"है,, इस प्रकार का ज्ञान वा शब्द का प्रयोग सत्ता का लिङ्ग (लक्षण

वा चिह्न) है । यह द्रव्य गुण कर्मों में विशेषतारहित एक ही समान है इस से और अन्य कोई लिङ्ग विशेष न होने से सत्ता अर्थात् भाव एक ही है । सब द्रव्य आदिकों में सत्ता एक ही है अन्यथा द्रव्यत्व आदि के समान व्यक्तिमान् होने से सत्ता को न होना चाहिये अथवा द्रव्य को न रहना चाहिये। विशेष लिङ्ग के अभाव से इस का अर्थ ऐसा भी ग्राह्य है कि विशेष का अर्थ भेद है उस में लिङ्ग अर्थात् अनुमान के अभाव से भेद नहीं है यथा यह ज्ञान होता है कि यह वही दीप है इस में जैसे ह्रस्वत्व दीर्घत्व आदि परिमाण भेद रूप विशेष लिङ्ग होते हैं ऐसा इस में (भाव में) विशेष लिङ्ग नहीं है वा नहीं होता इस से भाव एक ही है। इस प्रकार से सूत्रकार के प्रतिपादन से और विचार से भी भाव का द्रव्य आदि से पृथक् होना व एक होना सिद्ध होने से "छः पदार्थ भाव रूप ही हैं" यह कहना सर्वथा अयुक्त व कणाद महर्षि के मत के विरुद्ध ही है इस से न मानने योग्य और अप्रमाण रूप है यह निश्चय करना चाहिये । इस से भाव अष्टम मानने योग्य है अथवा उक्त प्रकार से छ ही पदार्थ ग्रहण के योग्य हैं उक्त छः पदार्थों से विलक्षण होने से भाव और अभाव सूत्रकार की रीति अनुसार भिन्न ही व्याख्यान के योग्य हैं

इति समीक्षाकरे श्रीमत्प्रभुदयालुनिर्मिते पदार्थसमीक्षाविषये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

*

अथ वेदे बुद्धिपूर्वकवाक्यरचनादानाद्युपदेशहेतुभ्यः कस्यचित्परमज्ञानवतोऽलौकिकादृष्टफलज्ञातुर्वेदवक्तृत्वप्रतिपादने धर्मोपार्जनेदुष्टसज्जनयोः समभिव्याहारतः पापपुण्यफलप्राप्तिवर्णने वैशेषिकदर्शनस्यषष्ठाध्यायस्यप्रथमाह्निकस्य निम्नलिखितसूत्राणां यान्यन्यथाव्याख्यातानि तद्व्याख्यानंसमीक्ष्यते तत्रप्रकरणसम्बन्धविज्ञापनायादिप्रकरणात्क्रमेणसूत्राणांवाक्यार्थोऽत्रलिख्यते तत्रयेषांषष्ठादिसूत्राणामुपस्कारनिर्मात्रायदन्यथाव्याख्यानं कृतं तस्यसमीक्षणं तदनन्तरंतत्सत्यव्याख्यानमङ्गीक्रियते ॥

बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे ॥ १ ॥

वेदेवाक्यकृतिर्वाक्यरचनाबुद्धिपूर्वास्ति अर्थात्शब्दार्थान्वययुक्तत्वात्विधिनिषेधधर्मार्थकाममोक्षफलविषयकत्वाद्वक्तृयथार्थवाक्यार्थज्ञानपूर्वास्त्यतोवक्तुः परमज्ञातृत्वसूचिकेति ॥

अथास्य भाषानुवादः ॥

अथ वेद में बुद्धिपूर्वक वाक्यरचना ज्ञात होने और दान आदि का उपदेश होने के हेतुओं से वेद किसी परम ज्ञानवान् अलौकिक अतुल्यकल के जानने वाले से कहा गया है। यह प्रतिपादन करने व धर्मोपार्जन व दुष्ट व सज्जनों के साथ समभिव्याहार से पाप पुण्य फल प्राप्त होने के वर्णन विषय में वैशेषिकदर्शन के छठवें अध्याय के प्रथमाह्निक के निम्न लिखित सूत्रों में से जो अन्यथा व्याख्यान किये गये हैं उन के व्याख्यान की समीक्षा की जाती है। प्रथम प्रकरण सम्बन्ध जनाने के लिये आदि प्रकरण से क्रम से सूत्रों के वाक्यों का अर्थ यहां लिखा जाता है उन में से छठवें सूत्र आदि का जो उपस्कार नामक भाष्य के बनाने वाले व वृत्तिकार ने अन्यथा अर्थात् अयुक्त व्याख्यान किया है उस की समीक्षा और उस के पश्चात् उन का सत्य व्याख्यान किया जाता है ॥

बुद्धि पूर्वक वाक्य की रचना वेद में है ॥

शब्द व अर्थ के अन्वययुक्त और विधि निषेध धर्म अर्थ काम मोक्ष फल विषयक वाक्यरचना वेद में होने से वक्ता के यथार्थ वाक्यार्थ ज्ञानपूर्वक रचना है ऐसी बुद्धिपूर्वक रचना का होना ज्ञात होता है इस से वक्ता के परमज्ञाता होने की सूचक है ॥ १ ॥

ब्राह्मणेसंज्ञाकर्मसिद्धिलिङ्गम् ॥ २ ॥

प्रकारान्तरेणवेदवाक्यानांबुद्धिपूर्वकत्वमाह । ब्राह्मणमिहवेदभागोवेदाङ्गं वाज्ञातव्यं तत्रयःसंज्ञाकर्म नामकरणं तद्व्युत्पादकस्यबुद्धिमाक्षिपति ॥ २ ॥

अथ भाषानुवादः

ब्राह्मण में संज्ञा कर्म सिद्धि होने का चिह्न है ॥२॥

अब अन्य प्रकार से वेद वाक्य का बुद्धिपूर्वक होना वर्णन करते हैं ब्राह्मण शब्द से यहां वेदभाग वा वेद का अङ्ग समझना चाहिये उस में संज्ञाकर्म अर्थात् नामकरण का वर्णन है वह वर्णन करने वाले की बुद्धि का सूचक है इस से वक्ता के ज्ञान होने की सिद्धि का लिङ्ग (चिह्न) है ॥

बुद्धिपूर्वोददातिः ॥ ३ ॥

स्वर्गकामोगांदद्यात् इत्यादौ यद्दानप्रतिपादनं तद्दानेष्टसाधनताज्ञानजन्यंददातिरितिधातुनिर्देशोधात्वर्थंदानमुपलक्षयति ॥ ३ ॥

अथ भाषानुवादः

बुद्धिपूर्वक दान है ॥ ३ ॥

स्वर्ग की इच्छा करने वाला पृथिवी वा गौ को देवै इत्यादि वाक्यों में जो दान का प्रतिपादन है वह दान के इष्टसाधनता के ज्ञान से है अर्थात् दान इष्ट को प्राप्त करने वाला वा सिद्ध करनेवाला है इस ज्ञानपूर्वक है ददाति यह धातु का कहना धातु के अर्थ दान को उपलक्षित करता है अर्थात् दान को सूचित करता है ॥ ३ ॥

तथा प्रतिग्रहः ॥ ४ ॥

प्रमाणान्तरमाह । प्रतिग्रहप्रतिपादिका अपि श्रुतयो बुद्धिपूर्विकाः । भूम्यादिप्रतिग्रहप्रतिपादिन्यः श्रुतयः प्रतिग्रहीतुः श्रेयःसाधनतत्पराः । कृष्णसार चर्मादिप्रतिग्रहप्रतिपादिकाः श्रुतयः प्रतिग्रहीतुरनिष्टसाधनताबोधिकाः । नचेष्टानिष्टसाधनेऽर्वाचीनपुरुषबुद्धिगोचरे भवितुमर्हतः ॥४॥

अथ भाषानुवादः ॥

वैसे ही प्रतिग्रह है ॥४॥

अन्य प्रमाण को वर्णन करते हैं वैसे ही अर्थात् दान के समान प्रतिग्रह की प्रतिपादन करने वाली श्रुतियां भी बुद्धि पूर्वक हैं अर्थात् भूमि प्रतिग्रह की प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियां प्रतिग्रह करनेवाले के कल्याण साधन में तत्पर हैं कृष्णसार के चर्म के प्रतिग्रह की प्रतिपादक श्रुतियां प्रतिग्रहीता के अनिष्टसाधनता को जनाने वाली हैं यह इष्टसाधन व अनिष्टसाधन लौकिक मनुष्यों की बुद्धि से ज्ञात नहीं होसके ॥ ४ ॥

आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात् ॥ ५ ॥

आत्मान्तरगुणानां पुण्यपापानामात्मान्तरे यौ सुखदुःखात्मकौ गुणौ तयोरकारणत्वात् एवञ्चप्रत्यात्मनिष्ठाभ्यामेवधर्माधर्माभ्यांसुखदुःखे, न व्यधिकरणाभ्या,—मन्यथा येन यागहिंसादिकं न कृतं तस्य तत्फलंस्यादितिकृतहानिरकृताभ्यागमश्चप्रसज्येत ॥ ५ ॥

अथ भाषानुवादः

अन्य आत्मा में अन्य आत्मा के गुणों के कारण न होने से ॥ ५ ॥

अन्य आत्मा के पाप पुण्य रूप जो गुण हैं वह अन्य आत्माके सुख दुःख रूप

गुणों के कारण नहीं होते अन्य में अन्यात्मा के गुण कारण न होने से प्रत्येक आत्मा में निष्ठ जो धर्म व अधर्म हैं उनसे प्रत्येक आत्मा के सुख दुःख होते हैं अन्यथा नहीं होते । अन्यथा होने में जिसने यज्ञ हिंसा आदि पुण्य पाप नहीं किया उस को उन का फल होगा ऐसा होने में किये हुये की हानि, न किये हुवे की प्राप्ति होने का प्रसंग होगा ॥५॥

अथ निम्नलिखितसूत्राणामुपस्कारनिर्मातुर्व्याख्यानं तत्समीक्षणञ्च ॥

तद्दुष्टभोजने न विद्यते ॥६॥

तदित्याशीर्दानफलंपरामृशति दुष्टब्राह्मणाः पात्रानधिकारिणोयत्रश्राद्धेभोज्यन्तेतत्रापिपितरितत्फलंनविद्यतेनभवतीत्यर्थः श्राद्धफलमेवनभवतिपितरीत्यर्थः एवमुपस्कारनिर्मात्राव्याख्यातमिदंनैतद्व्याख्यानंसमीचीनंकल्पनामात्रेणैवब्राह्मण श्राद्धपितृशब्दानांग्रहणात् तेषांपूर्वसम्बन्धाभावात्सामान्यतः सूत्रे दुष्टशब्दे चोक्ते दुष्टब्राह्मणस्यैवनिषेधेहेत्वाभावाद्दानविधानेब्राह्मणव्यतिरिक्तेप्यन्नभोजनदानविध्युपलब्धत्वात् ॥६॥

अस्य भाषानुवादः ॥

अब नीचे लिखे हुये सूत्रों का उपस्कार नाम भाष्य के निर्माता (रामभिश्र) का व्याख्यान और उस की समीक्षा को लिखते हैं ॥

वो दुष्ट के भोजन में नहीं होता ॥६॥

वह शब्द दान फल का सूचक है । दुष्ट ब्राह्मण जो अधिकारी पात्र नहीं हैं वे जिस श्राद्ध में भोजन करते हैं उस में पितरों में वह फल नहीं होता है अर्थात् पितरों को फल नहीं प्राप्त होता है न श्राद्ध का फल होता है ऐसा यह उपस्कार निर्माता का (बनाने वाले का) व्याख्यान अच्छा नहीं है क्योंकि विना पूर्व सम्बन्ध व सूत्र शब्दों के साथ सम्बन्ध के कल्पनामात्र से ब्राह्मण श्राद्ध पितर शब्दों को ग्रहण किया है और सामान्य से सूत्र में दुष्ट शब्द कहने पर दुष्ट ब्राह्मण ही के निषेध में कोई हेतु नहीं है और दानविधान में ब्राह्मण से भिन्न में भी अन्नभोजनदान की विधि ज्ञात होती है इन हेतुओं से अयुक्त है ॥६॥

दुष्टं हिंसायां ॥ ७ ॥

प्रवृत्तशब्दःशेषः हिंसायामितिनिषिद्धकर्ममात्रोपलक्षणं तेन निषिद्धे कर्मणि प्रवृत्तंदुष्टंविजानीयादित्यर्थः ॥ ७ ॥

भाषानुवादः ॥

हिंसा में प्रवृत्त हुये को दुष्ट जाने ॥ ७ ॥

प्रवृत्त शब्द सूत्र में शेष है। हिंसा शब्द उपलक्षण मात्र के लिये है। हिंसा आदि निषिद्ध कर्म में प्रवृत्त को दुष्ट जाने। यह तात्पर्य्य है ॥७॥

तस्य समभिव्याहारतोदोषः ॥ ८ ॥

न केवलं दुष्टब्राह्मणस्य श्राद्धे निमन्त्रितस्य भोजनेफलाभावःपापमपिभवतीत्याह तस्यनिषिद्धे कर्मणि प्रवृत्तस्य एकपङ्क्तिभोजनसहशयनसहाध्ययनादिलक्षणाद्दोषः पापमित्यर्थः एतदुपस्कारनिर्मातुर्व्याख्यानम्। अत्रेदंविचारणीयंयदिब्राह्मणव्यतिरिक्तस्यसमभिव्याहारात् दोषोनस्यात्तर्हिदुष्टब्राह्मणमात्रस्य समभिव्याहाराद्दोषोऽयमर्थोग्राह्यः स्यात् नैवं किमपिप्रमाणमुपलभते। समभिव्याहारशब्दोनभोजनमात्रस्यवाचकः "समभिव्याहारात्एकपङ्क्तिभोजनसहशयनसहाध्ययनादिलक्षणात्"। एवमुपस्कारनिर्मात्रैवोक्तत्वात् भिन्नार्थवाचकत्वमिद्धः। अतोनश्राद्धनिमन्त्रितस्येतिकथनरूपंविशेषणमाकाङ्क्षते तथाच सामान्यतउक्तस्यदुष्टस्यतच्छब्देनग्रहणयुक्तमितिवाच्यम्। उपस्कारनिर्माता किञ्चित्स्वार्थसाधनेन वाभिप्रायविशेषेणैवंव्याख्यातवान् इत्यनुमीयते ॥८॥

भाषानुवादः ॥

उस के समभिव्याहार से दोष होता है ॥८॥

श्राद्ध में निमन्त्रित दुष्ट ब्राह्मण के भोजन से केवल फल का अभाव ही नहीं होता पाप भी होता है यह कहने के लिये यह कहा है कि उसके (दुष्ट ब्राह्मण के) समभिव्याहार से (वर्ताव से) अर्थात् एक पंक्ति में भोजन करने साथ सोने व पढ़ने आदि से दोष [पाप] होता है इस उपस्कार निर्माता के व्याख्यान में यह विचारणीय है कि जो ब्राह्मण से भिन्न अन्य के समभिव्याहार से दोष न होवै तो दुष्ट ब्राह्मण मात्र के समभिव्याहार से दोष होता है यह अर्थ ग्राह्य है परन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। समभिव्याहार शब्द विशेष भोजन अर्थ का वाचक नहीं है क्योंकि "एक पङ्क्ति में भोजन करना साथ शयन करना साथ पढ़ना आदि लक्षण रूप समभिव्याहार से" ऐसा स्वयं उपस्कार निर्माता के कहने से भिन्न अर्थवाचक होना सिद्ध है इस से श्राद्ध में निमन्त्रित होने का विशेषण कहने की आकांक्षा वा आवश्यकता नहीं है इस से "उस" के शब्द से सामान्य से कहे हुये दुष्ट का ग्रहण करना युक्त है उपस्कार

निर्माता ने कुछ स्वार्थसाधन व अभिप्राय विशेष से ऐसा व्याख्यान किया है यह अनुमान किया जाता है॥८॥

तदृदुष्टे न विद्यते ॥९॥

तत्पापमदुष्टे यथाशास्त्रंव्यवहियमाणेब्राह्मणेश्राद्धेभोजने न विद्यते अत्रव्याख्याने "ब्राह्मणे, श्राद्धे" आभ्यांद्विशब्दाभ्यांविशिष्टवर्णकालविशेषमात्रेणव्याख्यानं न कर्तव्यम् । श्राद्धे ब्राह्मणव्यतिरिक्तधार्मिकभोजनेपि पापासंभवात् । श्राद्धस्य सम्बन्धाप्राप्तेश्च ॥

अस्य भाषानुवादः

वह जो दुष्ट नहीं है उसमें नहीं होत ॥ ९ ॥

वह पाप ,जो शास्त्र के अनुसार व्यवहार करता है दुष्ट नहीं है ऐसे ब्राह्मण के श्राद्ध में भोजन करने में नहीं होता । इस व्याख्यान में ब्राह्मण व श्राद्ध इन दो शब्दों का ग्रहण युक्त नहीं है इन दो शब्दों से विशिष्ट व्याख्यान न करना चाहिये क्यों कि श्राद्ध में ब्राह्मण से व्यतिरिक्त अन्य धार्मिक के भोजन करने में भी पाप का होना संभव नही है और श्राद्ध का कुछ सम्बन्ध भी नहीं है ॥९॥

पुनर्विशिष्टे प्रवृत्तिः ॥१० ॥

श्राद्धेप्रतिग्रहेवाविशिष्टायथाशास्त्रमनुवर्तमानायदिलभन्ते तदानिमन्त्रितानपिनिन्द्यान्परिहृत्यतानेवभोजयेत्, ननिमन्त्रितान्प्रत्याचक्षीतइतितुसत्पात्रपरम् "निंद्यांस्तुनिमन्त्रितान्द्रविणदानादिनासंतोषयेत्" इदंव्याख्यानमयुक्ततरम्। निन्द्यस्यसमभिव्याहारादर्थात् सहभोजनाध्ययनादिलक्षणाद्दोषःपापमित्युपदेशानन्तरमुपदेशकेननिमन्त्रणविध्युपदेशासम्भवादुपदेशप्राप्तेननिन्द्यस्यनिमन्त्रणासंभवान्निन्द्यस्य निमन्त्रणाभावेनिमन्त्रितान्निन्द्यानितिकथनस्यैवाऽयुक्तत्वात् ॥१०॥

अस्य भाषानुवादः ॥

फिर विशिष्ट में प्रवृत्ति उचित है ॥१०॥

श्राद्ध में अथवा प्रतिग्रह में जो विशिष्ट शास्त्र के अनुसार आचरण करने वाले मिलें तो जो निन्दित निमन्त्रित भी होंय तो उनको त्यागकर विशिष्टों को भोजन करावे जो यह कहा है कि निमन्त्रितों का तिरस्कार न करे यह सत्पात्र के लिये कहा है निन्द्यनिमन्त्रितों को द्रव्यादि से संतुष्ट

करै यह व्याख्यान अत्यन्त अयुक्त है निन्द्य के साथ भोजन अध्ययनादि रूप समभिव्याहार से पाप होता है ऐसा उपदेश करने के पश्चात् उपदेशक से निन्द्य के निमन्त्रण की विधि का उपदेश संभव न होने से तथा उपदेश को प्राप्त हुवे से निमन्त्रण संभव न होने से निन्द्य के निमन्त्रण का अभाव होने में "निन्द्य निमन्त्रित" ये कहना ही अयुक्त है ॥

समे हीने वा प्रवृत्तिः ॥११॥

समेस्वसदृशे हीनेस्वापेक्षया गुणादिना न्यूने अदुष्टेपात्रेश्राद्धदानादौप्रवृत्तिर्येषांतेषामेवाशीर्दानात्पितरिसुखमित्यर्थः। यदिपूर्वसूत्रस्यव्याख्यानं यथार्थत्वेनकृतंतर्हीदमप्येवंव्याख्येयमासीत्। समेहीनेधार्मिकउपलब्धेनिमन्त्रितानपिनिन्द्यान्नभोजयेत्। प्रमादतःस्वव्याख्यानरीतिंविस्मृतवान्व्याख्यातेत्यनुमीयते। ब्राह्मणमात्रेश्राद्धेभोजनदाननियमेसतिक्षत्रियादिभिः कृतेदानेश्राद्धेवातदपेक्षयासमत्वंहीनत्वञ्चब्राह्मणस्यैवसेत्स्यतीदमेवविचार्य्योपस्कारनिर्मोताऽस्यव्याख्याने श्राद्धब्राह्मणशब्दौ द्वावपि त्यक्तवान्। युक्त्योक्तव्याख्यानस्यासंगतेर्न्नब्राह्मणश्राद्धमात्रनियतत्वेनप्रवृत्तिकथनंप्रशस्तमिति ॥११॥

अथास्य भाषानुवादः ॥

सम अथवा हीन में प्रवृत्ति होना चाहिये ॥११॥

अपने समान अथवा अपने से जो गुण आदि में हीन अर्थात् न्यून अदुष्ट पात्र हो उसमें श्राद्ध आदि में दान आदि की प्रवृत्ति होना चाहिये उन ही के आशीस व दान से पितरों को सुख होता है। जो पूर्व सूत्र का व्याख्यान यथार्थ किया गया था तौ यह सूत्र भी इस प्रकार से व्याख्यान के योग्य था कि जो सम वा हीन धार्मिक प्राप्त होवैं तौ निमन्त्रित निन्द्यों को भोजन न करावै। परन्तु ऐसा अनुमित होता है कि व्याख्यानकर्ता ने प्रमाद से अपने व्याख्यान की रीति को भूल कर ऐसा व्याख्यान किया है। श्राद्ध में ब्राह्मण मात्र के लिये भोजन दान का नियम होने में क्षत्रिय आदि से किये हुवे श्राद्ध वा दान में उनकी अपेक्षा सम होना व न्यून होना ब्राह्मण ही का सिद्ध होगा यही विचार कर उपस्कारनिर्मोता ने इस सूत्र के व्याख्यान में श्राद्ध व ब्राह्मण इन दोनों शब्दों को त्याग दिया है युक्ति से उक्त व्याख्यान के युक्त न होने से ब्राह्मण व श्राद्ध मात्र के नियमयुक्त प्रवृत्ति का वर्णन उत्तम नहीं ॥११॥

एतेनहीनसमविशिष्टधार्मिकेभ्यः परस्वादानंव्याख्यातम् ॥१२॥

यथोत्तरं धर्मोत्कर्षः हीनादपि भूम्यादिप्रतिग्रहे समादपि स्वापेक्षया विशिष्टाद्-पि धार्मिकात् धर्म इत्यर्थः॥ परस्मात्स्वस्य धनस्यादानं प्रतिग्रहः, वृत्तिकारस्तु परस्वा-दानं चौर्य्यादिना परस्वग्रहणं व्याख्यातवान् तथा च श्रुतिः शूद्रात्सप्तमे वैश्याद्द-शमे क्षत्रियात्पञ्चदशे ब्राह्मणात्प्राणसंशये इति क्षुधा पीडितमात्मानं कुटुम्बं रक्षितुं सप्त दिनान्याहारमप्राप्य शूद्राद्भक्ष्यापहारः कार्य्यः। तथाग्रेऽपि क्षत्रियादि-षु ज्ञेयोऽस्ति। अस्मिन् व्याख्याने चौर्य्यादिना परस्य धनापहारत्व कथयाद्वृत्तिकारस्य कीदृग्धार्मिकत्वमवगम्यत इति विचार्यमस्ति। यदि क्षुधापीडिते प्राणसंशये परध-नापहारित्वं न दोषाय भवतीत्युक्तं स्यात् तर्हि कल्पनाव्यतिरिक्तसूत्रशब्दात्पूर्वस-म्बन्धाद्वा न कोऽपि हेतुरीदृशकल्पनायाः। संभवादन्यथैतत्प्रकारकं व्याख्यानम् ॥१२॥

अस्य भाषानुवादः

इसी प्रकार से हीन सम व विशिष्ट धार्मिकों से पर के अर्थात् उन के धन का ग्रहण व्याख्यात समझना चाहिये ॥१२॥

क्रम से यथोत्तर धर्म की अधिकता का कथन है। हीन धार्मिक से भी भूमि आदि के प्रतिग्रह में और सम और विशिष्ट धार्मिक से प्रतिग्रह में धर्म है। पर से धन का ग्रहण प्रतिग्रह है वृत्तिकार ने तो परस्वादान का अर्थ चोरी आदि से पर का धन ग्रहण करना वर्णन किया है वैसे ही श्रुति में कहा है कि क्षुधा से पीडित को अपने कुटुम्ब की रक्षा करने के लिये सात दिन तक भोजन न प्राप्त होने पर सातवें दिन शूद्र से तथा दशवें दिन वैश्य से पन्द्रहवें दिन क्षत्रिय से प्राण हानि होने के संशय में ब्राह्मण से भक्ष्य (खाने योग्य) वस्तु का अपहरण करना चाहिये। इस व्याख्यान में चोरी आदि से परधन का हरण कहने से वृत्तिकार का कैसा धार्मिक होना ज्ञात होता है यह विचार-णीय है। जो यह कहा जावे कि क्षुधा पीडित होने व प्राणहानि होने के संशय में प्राणरक्षा के प्रयोजन से परधन वा भक्ष्य के हरण में दोष नहीं है तो कल्पना के व्यतिरिक्त सूत्र के शब्द वा पूर्व के सम्बन्ध से कोई हेतु ऐसी कल्पना का संभव न होने से इस प्रकार का व्याख्यान अन्यथा ही है ॥१२॥

तथा विरुद्धानां त्यागः ॥१३॥

न केवलं प्राणसंशये परस्वादानं निषिद्धं किन्तु तस्यां दशायामपहर्त्तुं ये न प्र-यच्छन्ति तेषां वधोऽपि कार्यः। न तावता धर्महानिरधर्मप्रादुर्भावो वेत्याह-तस्यां द-शायां विरुद्धानां विपरीताचरतां त्यागो वधः कार्य इत्यर्थः। तदुक्तं, कर्मणा येन के-

नापिमृदुनादारुणेनवा ॥ उद्धरेद्दीनमात्मानंसमर्थोधर्ममाचरेत् ॥ १ ॥ नैतदुपस्कार-
निर्मात्राकृतंव्याख्यानंयुक्तंविद्वद्भिर्मन्तव्यमस्ति । स्वकल्पनाकल्पितत्वात्त्यागश-
ब्दस्याप्रसिद्धस्यवधार्थस्यग्रहणात् दुष्टंहिंसायामित्यस्मिन्पूर्वोक्तसूत्रे हिंसायांप्र-
वृत्तंदुष्टंजानीयादित्युक्तत्वात् । महर्षिसूत्रकारस्यवाक्याशयाभ्यांविरुद्धत्वात्तथा-
ऽस्मान्मनुवचनात् "वर्षेवर्षेऽश्वमेधेनयोयजेतशतंसमाः ॥ मांसानिचनखादेद्यस्तयोः
पुण्यफलंसमम्" ॥ १ ॥ मृगपक्षिणामपिहिंसायानिषेधः अहिंसनेऽश्वमेधकर्तृसम
पुण्यफलस्यावगमात्तद्विरुद्धब्रह्महत्यायाअप्यत्रव्याख्यानेविधानस्यसिद्धत्वात् ।
तथा "अहिंसापरमोधर्मः" इत्याद्याप्तवचनविरुद्धनिषिद्धकर्मप्रवृत्त्युपदेशात् क्षुधा
पीडितेप्यात्मनिमप्रदिनान्याहारमप्राप्यशूद्राद्धस्यापहारःकार्यः इत्यादौ । तथा
येनकेनकर्मणादीनमात्मानमुद्धरेदितिवर्णने वधस्यस्पष्टोपदेशाभावेवधार्थग्रहणे
कल्पनामात्रनिश्चयादापद्धर्मस्यात्रासम्बन्धात्सर्वथाऽयुक्तंव्याख्यानमित्यवधेयम् ।
आसप्तदिनाद्याहाराप्राप्तस्यप्राणसंशयापन्नस्यस्व.विपरीताचरतोविरुद्धस्यहन्तृ-
त्वमप्यसंभवत्वयमप्ययुक्तताहेतुः ॥

अस्य भाषानुवादः

वैसे ही विरुद्धों का त्याग करना चाहिये ॥ १३ ॥

प्राणसंशय में पर के धन का ग्रहण निषिद्ध नहीं है केवल इतना ही न समझना चाहिये किन्तु ऐसी दशा में जो धन हरणे वाले को नहीं देते हैं उन का वध भी करना चाहिये वध करने तक में धर्म की हानि नहीं है न अधरम होता है । यह कहने के अभिप्राय से यह कहा है कि वैसी दशा में विरुद्धों का अर्थात् विरुद्ध आचरण करने वालों का त्याग अर्थात् वध करना चाहिये ऐसा कहा भी है कि "मृदु वा कठिन किसी प्रकार के करम से दीन आत्मा को उद्धार करै" और समर्थ हो तो धरम को" करै यह उपस्कार निर्माता से किया हुआ व्याख्यान युक्त व विद्वान् जनों के मानने योग्य नहीं है क्योंकि व्याख्याता की कल्पनामात्र से कल्पित होनेसे और त्याग शब्द का अप्रसिद्ध वध का अर्थ ग्रहण करने से अयुक्त है "दुष्टं हिंसायां" इस पूर्व सूत्र में हिंसा में जो प्रवृत्त है वह दुष्ट है ऐसा कहने से महात्मा सूत्रकार के वाक्य व आशय से विरुद्ध होने से और धर्म के परम ज्ञाता मनु जी महाराज के इस वचन से कि "वर्ष २ में जो सौ वर्ष अश्वमेधयज्ञ करै और जो मांसों को न खाय उन दोनों का पुण्य फल बराबर है" मृग पक्षियों के भी हिंसा का निषेध व

हिंसा न करने में अश्वमेधकर्त्ता के समान पुण्य फल होना सिद्ध होने से और इस व्याख्यान में ब्रह्महत्या का भी विधान सिद्ध होने से तथा "अहिंसा परमधर्म है" इत्यादि आप्त वचनों के विरुद्ध निषिद्ध कर्म में प्रवृत्ति होने का उपदेश होने से और क्षुधा से पीडित होने में सात दिन आहार न मिलने पर शूद्र से भक्ष्य का हरण करना चाहिये इत्यादि तथा "मृदु वा कठिन किसी कर्म से दीन आत्मा को उद्धार करै" इस वर्णन में वध का स्पष्ट उपदेश न होने में वध का अर्थ ग्रहण करने में कल्पना मात्र निश्चय होने से और आप द्धर्म का सम्बन्ध न होने से सर्वथा व्याख्यान अयुक्त है यह निश्चय करना चाहिये। सात दिन पर्य्यन्त आदि आहार को न प्राप्त हुये प्राण संशय में प्राप्त हुये का अपने रोकने वाले विरुद्धाचरण करने वाले का वधकर्त्ता होना भी असंभव है यह भी अयुक्त होने का हेतु है ॥१३॥

हीने परे त्यागः ॥ १४ ॥

यदिस्वस्माद्धीनःपरोभवतियोऽपहर्तुंनददातितस्यशूद्रादेस्त्यागोवधइति ॥१४॥

भाषानुवादः ॥

हीन में पर में त्याग उचित है ॥ १४ ॥

जो अपने से हीन पर होवै और धन हरण में रोकै तौ उस शूद्र आदि का वध करना चाहिये ॥ १४ ॥

समे आत्मत्यागः परत्यागो वा ॥ १५ ॥

यदिस्वसदृशेब्राह्मणएवविरोधीभवतितदाऽऽत्मनएवोपवासादिनात्यागोऽवसादःकार्यः। यदिस्वस्यकुटुम्बस्यवारक्षाप्रकारोनदृश्यतेविरोधीचसमोभवतितदातस्यैवत्यागोवधइत्यर्थः ॥

अस्य भाषानुवादः ॥

सम में आत्मा का त्याग वा पर का त्याग उचित है ॥ १५ ॥

जो अपने समान ब्राह्मण ही विरोधी होवे तौ उपवास आदि कर के अपने शरीर को त्याग करै जो अपने वा अपने कुटुम्ब की रक्षा का कोई प्रयत्न न जान परै और विरोधी सम होवै तौ उसी का वध करै ॥ १५ ॥

विशिष्टे आत्मत्यागइति ॥१६॥

स्वापेक्षयाविशिष्टेवेदाध्ययनादिनोत्कृष्टेविरोधिनिआत्मनएवत्यागोविधेय इति। एषामपित्रयाणांसूत्राणांप्रत्येकस्यव्याख्यानेत्रयोदशसङ्ख्यकसूत्रोक्तकाल्प-

निकल्पत्वादिदोषावगमाद्व्याख्यानस्यान्यथात्वमयुक्तत्वञ्चावधेयमिति । अर्थात् "तद्दुष्टभोजने न विद्यते" इत्यारभ्यैतदन्तिमसूत्रपर्य्यन्तमधुनाऽन्यथाव्याख्यातानि सूत्राणि पुनर्युक्तसत्यार्थेन व्याख्यायन्ते ॥१६॥

अस्य भाषानुवादः ॥

विशिष्ट में आत्मा का त्याग उचित है ॥१६॥

जो विरोधी वेदाध्ययन आदि से अपने से विशिष्ट (श्रेष्ठ) हो तो अपने ही शरीर का त्याग करना चाहिये। इन तीन सूत्रों के भी प्रत्येक व्याख्यान में काल्पनिक होना आदि तेरहवें सूत्र में कहे हुये दोष प्राप्त होने के हेतुओं से व्याख्यान का अन्यथा व अयुक्त होना जानने योग्य है। अब वह दुष्ट के भोजन में नहीं होता है यहां से आरम्भ करके इस अन्त वाले सूत्र तक अन्यथा व्याख्यान किये गये सूत्रों का फिर युक्त व सत्य अर्थ के साथ व्याख्यान किया जाता है ॥१६॥

तद्दुष्टभोजने न विद्यते ॥ ६ ॥

तत्पूर्वोक्तंदानंदानविधानं वा दानेप्सितफलं वा दुष्टभोजनेऽर्थात् श्राद्धे वा कस्मिंश्चित्कालेदानाभिप्रायेणदुष्टभोजनेदुष्टायान्नदाने वा न विद्यते । अर्थात् दुष्टभोजनेदानविधिर्दानफलं वा न विद्यते अतोदुष्टो न भोजनीयस्तस्मै न दानाभिप्रायेणकिञ्चिद्देयमिति को दुष्टइत्यपेक्षायामाह—

भाषानुवादः

वह दुष्ट के भोजन में नहीं होता है ॥६॥

वह पूर्वोक्त दान वा दानफल अथवा दान से ईप्सित फल दुष्ट के भोजन में अर्थात् श्राद्ध में वा किसी काल में दान के अभिप्राय से दुष्ट को भोजन कराने भोज्य वस्तु देने वा दुष्ट के लिये अन्न देने में नहीं होता अर्थात् दुष्ट के भोजन कराने में दानविधि व दानफल नहीं है इस से दुष्ट भोजन कराने योग्य नहीं। दान के अभिप्राय से उस को कुछ न देना चाहिये। दुष्ट किस को समझना चाहिये यह विज्ञापन के लिये यह कहा है—

दुष्टं हिंसायाम् ॥ ७ ॥

हिंसायांकोऽर्थः हिंसायांप्रवृत्तंदुष्टंविजानीयादित्यर्थः । प्रवृत्तमितिशेषः । क्रियाक्षेपेणग्राह्या हिंसायामितिनिषिद्धकर्ममात्रोपलक्षणमितिमत्वा निषिद्धकर्मणि प्रवृत्तंदुष्टंजानीयादेवमर्थोग्राह्यः ॥

अस्य भाषानुवादः ॥

हिंसा में प्रवृत्त को दुष्ट जानै ॥ ७ ॥

प्रवृत्त शब्द सूत्र में शेष है क्रिया भी शेष है "जानै" यह क्रिया आक्षेप से ग्राह्य है "हिंसा में" यह शब्द निषिद्ध कर्म मात्र के उपलक्षण के लिये है ऐसा मान कर निषिद्ध कर्म मात्र में प्रवृत्त को दुष्ट जानै ऐसा अर्थ ग्राह्य है ॥

तस्य समभिव्याहारतो दोषः ॥ ८ ॥

दुष्टः सर्वथापरित्याज्यः इत्यभिप्रायेणाह तस्य दुष्टस्यसमभिव्याहारतः समभिव्याहारात् सहभोजनसहशयनसहाध्ययनादिलक्षणाद्दोषः पापं जायते। तत्सङ्गत्या वार्तया तदनुगुणबुद्ध्युत्पत्या निषिद्धकर्मप्रवृत्तेर्भविष्यत्काले वा तत्संभवात्सपरिणामश्रेयोऽभिलाषिभिर्धार्मिकैस्त्याज्यः ॥

भाषानुवादः ॥

उस के समभिव्याहार से दोष (पाप) होता है ॥८॥

दुष्ट सर्वथा परित्याज्य है इस अभिप्राय से यह कहा है कि उस के (दुष्ट के) समभिव्याहार से (साथ वर्ताव करने से) अर्थात् साथ भोजन करने साथ शयन करने साथ पढ़ने आदि से दोष होता है उस की संगति से वार्ता से उस के समान गुण व बुद्धि उत्पन्न होने से निषिद्ध कर्म में प्रवृत्ति होने से अथवा भविष्यत् काल में ऐसा होना संभव होने से परिणामश्रेयोऽभिलाषी (कल्याण चाहने वाले) धार्मिक पुरुषों से वह त्याग करने योग्य है क्योंकि उस के संग करने से क्रम से भ्रष्ट व नष्ट होना संभव है ॥ ८ ॥

तददुष्टे न विद्यते ॥ ९ ॥

तत्पापमदुष्टेसत्पुरुषे न विद्यते सत्पुरुषस्यधार्मिकस्य समभिव्याहारतोदोषोनभवति धार्मिकेणसहभोजनाध्ययनशयनादिलक्षणकःसमभिव्याहारो न प्रतिषिद्धः इत्यर्थः। ननुदुष्टस्यसमभिव्याहारतोदोषः इतिकथनादनेनैववाक्येनार्थापत्तेस्तददुष्टे न विद्यते इति सिद्धेः किमर्थमन्यत्सूत्रंकृतं तत्रायंसमाधिः—श्रेयोर्थिविरक्तमुमुक्षूपासकैर्योगिभिः सर्वस्यसमभिव्याहारस्त्याज्यः इति योगदर्शनादिसद्ग्रन्थेषूक्तेः सामान्यतः सर्वस्यसमभिव्याहारस्यनिषेधावगमेगृहस्थैरविरक्तैरदुष्टस्य सदाचारिणः समभिव्याहारो न त्याज्यःयतस्तस्मैतस्यसमभिव्याहारस्सुखायसुबुद्ध्युत्पत्तयेभवति न पापायैतदर्थंपृथक्कथनमित्यवधेयम् ॥

भाषार्थः ॥

वह अदुष्ट में नहीं होता है ॥९॥

यह पाप अदुष्ट में (सत्पुरुष में) नहीं होता अर्थात् सत्पुरुष धार्मिक के समभिव्याहार से दोष नहीं होता है धार्मिक के साथ भोजन करना शयन करना पढ़ना आदि प्रतिषिद्ध नहीं हैं। जो यह शङ्का हो कि दुष्ट के समभिव्याहार से दोष होता है यह कहने से इसी वाक्य से अर्थापत्ति से वह दुष्ट में नहीं होता है यह सिद्ध हो जाने से इस के लिये पृथक् वाक्य कहने की आवश्यकता नहीं थी दूसरा सूत्र क्यों कहा है? तो इस का समाधान यह है कि कल्याणाभिलाषी विरक्त मुमुक्षु उपासक योगियों के लिये योगदर्शन आदि सद्ग्रंथों में सब का समभिव्याहार त्याग के योग्य होना कहा है सामान्य से सब के समभिव्याहार का निषेध ज्ञात होने में यह विज्ञापन के लिये कि अविरक्त गृहस्थों से धर्मवान् सदाचारी का समभिव्याहार त्यागने योग्य नहीं है क्योंकि उन के लिये उस का समभिव्याहार सुख व सुबुद्धि की उत्पत्ति करने वाला होता है पाप का कारण नहीं होता। पृथक् कथन से यह मन्तव्य है ॥

पुनर्विशिष्टे प्रवृत्तिः ॥ १० ॥

यदि यथाशास्त्रमनुवर्त्तमानोधार्मिकोविशिष्टःश्रेष्ठोलभ्येत वा विशिष्टालभ्येरन् तर्हिसमहीनान्परित्यज्यविशिष्टेविशिष्टेषुवादानेसमभिव्याहारेप्रवृत्तिर्युक्ता अर्थात् विशिष्टायवाविशिष्टेभ्यएवदानमुचितम्तेनवातैःसहैवसमभिव्याहारोयोग्यः ॥

अस्य भाषानुवादः ॥

फिर विशिष्ट में प्रवृत्ति होना चाहिये ॥ १० ॥

जो शास्त्र अनुसार आचरण करने वाला वा करने वाले विशिष्ट (श्रेष्ठ) मिले वा मिलें तो सम व हीनों को त्याग कर फिर विशिष्ट वा विशिष्टों में दान व समभिव्याहार विषयक प्रवृत्ति युक्त है अर्थात् विशिष्ट वा विशिष्टों के लिये दान उचित है उस के वा उन ही के साथ समभिव्याहार योग्य है ॥

समे हीने वा प्रवृत्तिः ॥११॥

विशिष्टाभावेसमेहीनेवाप्रवृत्तिरुचिता अर्थात्स्वसमेहीनेधार्मिकेप्रवृत्तिर्युक्ता नकदाचिदपिदुष्टेप्रवृत्तर्विधिरित्यर्थः ॥११॥

भाषानुवादः ॥

अथवा सम में हीन में प्रवृत्ति होना चाहिये ॥११॥

विशिष्ट न होने में सम वा हीन में प्रवृत्ति युक्त है अर्थात् अपने सम वा अपने से न्यून में प्रवृत्ति युक्त है परन्तु दुष्ट में प्रवृत्ति की विधि कभी नहीं है

अर्थात् दुष्ट के साथ प्रवृत्ति कभी न करना चाहिये ॥ ११ ॥

एतेन हीनसमविशिष्टधार्मिकेभ्यः परस्वादानं व्याख्यातम् ॥ १२ ॥

एतेन कथनेनैवहीनसमविशिष्टधार्मिकेभ्यःपरस्वादानमर्थात् परस्मात्स्वस्यधनस्यादानंग्रहणं व्याख्यातमस्तीत्यवधार्य्य नाधार्मिकस्यनिषिद्धव्यवहारात्कर्मणाउपार्जितस्यधनस्यनिन्द्यत्वात्प्रतिग्रहस्सत्पुरुषैर्धार्मिकैः कदापि कर्त्तव्य इत्यर्थः ॥ १२ ॥

अथ भाषानुवादः ॥

इसी प्रकार से हीन सम विशिष्ट धार्मिकों से पर के धन का ग्रहण व्याख्यात समझना चाहिये ॥ १२ ॥

जैसा कि दान का वर्णन किया गया है ऐसे ही हीन सम विशिष्ट धार्मिकों से पर के धन का ग्रहण व्याख्यात है यह समझना चाहिये अधार्मिक के निषिद्ध व्यवहार व कर्म से उपार्जित किये हुये धन का प्रतिग्रह सत्पुरुष धार्मिकों को कभी न करना चाहिये क्योंकि ऐसा धन निन्दित है ॥ १२ ॥

तथा विरुद्धानां त्यागः ॥ १३ ॥

यथाधार्मिकाणामुक्तधनस्यप्रतिग्रहोयुक्तउक्तोवा तथा तद्विरुद्धानामधार्मिकाणांधनस्यत्यागोयुक्तउक्तोवेतिज्ञातव्यः । उक्तोप्ययमर्थोनसमीचीनत्वेननिश्चीयते दानादानयोःसमहीनविशिष्टधार्मिकेभ्यः कथनादेवाधार्मिकेभ्योनिषेधसिद्धेरतोदानादानकथनानन्तरंतथाशब्दकथनस्यायमाशयोमहर्षेः सूत्रकारस्यावधार्य्यते । तथा—कोऽर्थः तथासतिवातथाचअर्थात् पूर्वोक्तप्रकारेणदुष्टस्यसमभिव्याहारतोदोषस्तस्यदानादानयोरनर्हत्वञ्च सिद्धेवानिश्चितेसतितद्विरुद्धानामधार्मिकाणां त्यागःकर्त्तव्यः । अर्थात्तैःसहदानादानसमभिव्याहारेषुधर्महानिंनिश्चित्य तेषां सर्वथात्यागएवयुक्तः नकेनापिहेतुनातत्संग्रहःकार्यइत्यर्थः ॥

अथास्य भाषानुवादः ॥

वैसे ही विरुद्धों का अर्थात् विरुद्धों के धन का त्याग है अथवा वैसा होने में विरुद्धों का त्याग उचित है ॥ १३ ॥

यथा धार्मिकों के धन का प्रतिग्रह युक्त वा उक्त (कहा गया) है तथा उन से विरुद्ध अधार्मिकों के धन का त्याग युक्त वा उक्त जानने योग्य है यद्यपि यह अर्थ कहा गया तथापि उत्तम होना निश्चित नहीं होता क्योंकि दान और प्रतिग्रह दोनों का सम हीन विशिष्ट व धार्मिकों के लिये वा धार्मिकों

से कहने ही से अधार्मिकों के लिये वा अधार्मिकों से दान व प्रतिग्रह का निषेध सिद्ध है इस से दान व ग्रहण कहने के पश्चात् तथा शब्द कहने का महाशय सूत्रकार का यह आशय निश्चय किया जाता है कि वैसा होने में अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार से दुष्ट के समभिव्याहार से दोष होना उस का दान व आदान (ग्रहण) के योग्य न होना सिद्ध होने वा निश्चित होने में व धार्मिक मात्रों के दान व आदान का विधान होने में धार्मिक से विरुद्धों का अर्थात् अधार्मिकों का त्याग करना चाहिये अर्थात् उन के साथ दान आदान व समभिव्याहार करने में धर्म की हानि निश्चय कर के उन का सर्वथा त्याग करना युक्त व उचित है किसी हेतु से उन का सग्रह न करना चाहिये ॥१३॥

हीने परे त्यागः ॥ १४ ॥

यदि कश्चिद्धार्मिकःकेनचित्कारणेन कस्यचिदधार्मिकस्यसङ्ग्रहंप्राप्नुयात्तर्हि किंकार्यमित्याकांक्ष्याह—हीने परे त्यागः । अस्यायमाशयः । यदिपरोदुष्टःस्वस्माद्धीनोभवेत्तर्हिपरेहीनेत्यागउचितः अर्थाद्विशिष्टेनसमर्थेनधार्मिकेणहीनेसतिपरेतस्यहीनस्यत्यागःकर्त्तव्यः । अर्थात्तत्संग्रहसंरक्षणाद्धार्मिकेदोषप्राप्त्यधर्मबुद्ध्युत्पत्तिसंभवात्तेनसत्याज्यएवेत्यर्थः ॥ १४ ॥

भाषानुवादः

हीन में परमें त्याग उचित है ॥ १४ ॥

जो किसी धार्मिक का किसी कारण से किसी अधार्मिक के साथ संग्रह हो जाये तो क्या करना चाहिये यह विज्ञापन वा उपदेश के लिये यह कहा है। हीन में पर में त्याग उचित है । इस का आशय यह है कि जो पर दुष्ट अपने से हीन होवे तो परहीन में त्याग उचित है अर्थात् विशिष्ट समर्थ धार्मिक से पर के हीन होने में उस हीन का त्याग उचित है अर्थात् उस के संग्रह रखने से धार्मिक में दोष होना व अधर्म की बुद्धि उत्पन्न होना सम्भव है इस से धार्मिक को उस का त्याग ही करना उचित है ॥ १४ ॥

समे आत्मत्यागःपरत्यागो वा ॥ १५ ॥

स्वस्मात्समेसतिदुष्टेयेनकेनप्रकारेणतेनात्मत्यागःस्वस्यत्यागःकारयितव्यो वाकेनचित्प्रयत्नेनप्राप्तसामर्थ्यात्स्वेनपरस्यत्यागःकर्त्तव्योवेति नतत्संग्रहःसंरक्षणीयइत्यर्थः ॥ १५ ॥

भाषानुवादः ॥

सम में आत्मत्याग वा पर का त्याग उचित है ।१५।

दुष्ट अपने समान होने में किसी प्रकार से उस से आत्मत्याग अर्थात् अपना त्याग प्राप्त करने योग्य वा कराने योग्य है अथवा किसी प्रयत्न से प्राप्त हुये सामर्थ्य से आप से पर का अर्थात् उस का त्याग करना चाहिये उस का सङ्ग्रह रखने योग्य नहीं है ॥

विशिष्टे आत्मत्याग इति ॥१६॥

विशिष्टेसतिदुष्टेअर्थात्विशेषसामर्थ्यप्राप्तेप्रबलेसतितत्त्यागेस्वशक्त्यप्राप्तौयेन केनप्रयत्नेनस्वस्मिन्तदुपेक्षा।वैमनस्यंवोत्पाद्यतेनात्मत्यागः स्वस्य त्यागः प्रापयितव्यः । यद्वा सर्वोत्तमेहामुत्रसुखसुगतिहेतुधर्मसंरक्षणायात्मनः शरीरस्य त्यागोमरणमुचितःनहिनिषिद्धकर्मसुप्रवृत्तिःस्वकार्य्येति, ईदृगेषांसूत्राणां व्याख्यानंतात्त्विकंज्ञेयमिति ॥ इति धर्माधर्मविषयवर्णने श्रीमत्पण्डितप्रभुदयालुनिर्मिते समीक्षाकरे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अस्य भाषानुवादः ॥

विशिष्ट में आत्मत्याग उचित है ॥१६॥

दुष्ट के विशिष्ट होने में अर्थात् विशेष सामर्थ्यवान् प्रबल होने में जो उस से भिन्न होने वा उसके त्याग करने में अपनी शक्ति न होवै तो किसी प्रयत्न से अपने में उनकी उदासीनता वा वैमनस्य उत्पन्न कराके अपना त्याग प्राप्त करने योग्य है अथवा सर्वोत्तम इस लोक व परलोक में सुख व सुगति के हेतु रूप धर्म की रक्षा के लिये आत्मत्याग शरीरत्याग अर्थात् मर जाना उचित है परन्तु निषिद्ध कर्म में प्रवृत्ति स्वीकार करना उचित नहीं है। ऐसा इन सूत्रों का व्याख्यान यथार्थ समझना चाहिये ॥ १६ ॥

इति धर्माधर्मविषयवर्णने समीक्षाकरे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथेश्वरविषयेसांख्यसूत्राणांव्याख्यानम् । ईश्वरप्रतिषेधविषयेयानिसांख्यसूत्राणिसन्ति वस्तुतःनैषांपूर्वापरसम्बन्धसमीक्षणान्महर्षेःसांख्याचार्य्यस्यन सर्वथेश्वरप्रतिषेधस्याशयोनिर्श्चीयते किन्तुव्यवहारतर्कायोग्यत्वाद्व्यावहारिकेश्वरस्यैवप्रतिषेधनंततस्तर्कमात्रेणासिद्धत्वबुद्धिपरत्वप्रतिपादनमेवावधार्य्यते । सामान्यतःस्थूलदृष्टयानिषेधसूत्राक्षरैःप्रतिषेधएवावगम्यते । प्रतिषेधपरत्वेनैवप्रायोव्याख्याकारैस्तानिसूत्राणिव्याख्यायन्ते । लोकेजनाःसांख्याचार्य्योनिरीश्वरवादीइतिमन्यन्ते । नैतत्तत्त्वमितिनिश्चयार्थंप्रथमसीश्वरप्रतिषेधविषयकसूत्राणि सार्थानिसाधारणतोविलिख्य तत्सिद्धान्तःप्रदर्श्यते ॥

ईश्वराऽसिद्धेः । अः १ । सू० ॥ ९२ ॥

ईश्वरस्यासिद्धेर्नेश्वरःइत्याशयः । अथवापूर्वसूत्रान्नदोषःइत्यनुवर्त्तते । अत एवमर्थोवाच्यः । ईश्वरस्यासिद्धेः । ईश्वरप्रमाणाभावान्नदोषइत्यर्थः । ईश्वराऽसिद्धिसिद्धयर्थहेतूनाह ॥

भाषानुवादः ॥

अब ईश्वर विषय में सांख्य सूत्रों का व्याख्यान किया जाता है ॥

ईश्वर के प्रतिषेध विषय में जो सांख्य सूत्र हैं वास्तव में उन का पूर्वापर सम्बन्ध विचारने से महर्षि सांख्याचार्य का सर्वथा ईश्वर के प्रतिषेध करने का आशय निश्चित नहीं होता किन्तु व्यवहार व तर्क के योग्य न होने से व्यावहारिक ही ईश्वर का प्रतिषेधन है उस से तर्कमात्र से सिद्ध न होना व बुद्धिपर होने ही का प्रतिपादन निश्चय किया जाता है सामान्य से स्थूल दृष्टि से निषेध विषयक सूत्रों के अक्षरों से प्रतिषेध ही ज्ञात होता है और प्रतिषेध ही पर होने ही के अर्थ से वह सूत्र प्रायः व्याख्याकारों से व्याख्यान किये जाते हैं । लोग सांख्याचार्य को निरीश्वरवादी मानते हैं परन्तु यह यथार्थ नहीं है यह निश्चय होने के लिये प्रथम ईश्वर के प्रतिषेध विषयक सूत्रों को अर्थसहित साधारण से लिख कर उन का सिद्धान्त विदित किया जाता है ॥

ईश्वर की सिद्धि न होने से । अ० १ । सू० ॥ ९२ ॥

ईश्वर की सिद्ध न होने से ईश्वर नहीं है यह आशय है अथवा पूर्व सूत्र से "दोष नहीं है" यह अनुवृत्ति से ग्रहण किया जाता है इस से ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिये कि ईश्वर की सिद्धि न होने से दोष नहीं है ॥

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः ॥ ९३ ॥

ईश्वरोऽभिमतःकिंक्लेशादिमुक्तोवातैर्बद्धोवा । अन्यतरस्याप्यसंभवान्नेश्वरसिद्धिः ॥ ९३ ॥

भाषानुवादः ॥

मुक्त व बद्ध दो में से एक न होने से उस की सिद्धि नहीं है ॥ ९३ ॥

ईश्वर क्लेशादि से मुक्त है वा बद्ध है दो में से एक भी संभव न होने से उस की ईश्वर की सिद्धि नहीं है मुक्त वा बद्ध होना सिद्ध नहीं होता इसी को आगे सूत्र में स्पष्ट करते हैं ॥

उभयथाप्यसत्करत्वम् ॥ ९४ ॥

ईश्वरस्योभयथाप्यसत्करत्वमस्ति वा ज्ञायते। अर्थात्मुक्तत्वेमतिसृष्ट्वा-द्यक्षमत्वं तत्प्रयोजकाभिमानरागाद्यभावात् बद्धत्वेऽपिमूढत्वात्सृष्ट्यादिक्षम-त्वमित्यर्थः ॥ ९४ ॥

नन्वेवमीश्वरप्रतिपादकश्रुतीनां का गतिस्तत्राह—

अस्य भाषानुवादः ॥

दोनों प्रकार से असत्कर होना (न करनेवाला होना) है ॥ ९४ ॥

ईश्वर का दोनों प्रकार से असत्करत्व है वा जाना जाता है अर्थात् मुक्त होने में सृष्टि में प्रवृत्ति होने के हेतु अभिमान व राग आदि न होने से ईश्वर सृष्टि का उत्पन्न करनेवाला नहीं होसक्ता और बद्ध होने में भी मूढ होने से सृष्टि आदि उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होसक्ता यह अभिप्राय है ॥९४॥

जो यह शङ्का होवै कि ऐसा मानने में ईश्वर की प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियों के विषय में क्या उत्तर होगा तो इस का उत्तर यह है ॥

मुक्तात्मनःप्रशंसा उपासासिद्धस्य वा ॥ ९५ ॥

यथायोग्यंकाचिच्छ्रुतिर्मुक्तात्मनः केवलात्मसान्यस्य ज्ञेयताभिधानाय स-न्निधिमात्रैश्वर्यस्तुतिरूपाप्ररोचनार्था काचित्सङ्कल्पपूर्वकसृष्ट्यादिप्रतिपादि-काश्रुतिः सिद्धस्यब्रह्मविष्णुहरादेर्वाऽनित्येश्वरस्याभिमानादिमतोऽपिगौणनि-त्यत्वादिमत्वान्नित्यस्वाद्युपासापरेत्यर्थः ॥९५॥ नन्वीश्वराऽसिद्धेरितियदुक्तंतन्नो-पपद्यते । कर्मफलदातृतयातत्सिद्धेरितिचेत्तर्हीदमुत्तरम्—

अस्य भाषानुवादः ॥

मुक्तात्मा की प्रशंसारूप वा सिद्ध की उपासना पर हैं ॥९५॥

यथायोग्य कोई श्रुति मुक्तात्मा का अर्थात् केवल आत्मा जाति का सन्नि-धिमात्र से ऐश्वर्ययुक्त जानने के योग्य होना कहने के लिये हैं अर्थात् प्रकृति (माया) उस की सन्निधि को अर्थात् समीपता को प्राप्त होने से उस की चेतनता शक्ति को प्राप्त होकर सृष्टि को उत्पन्न करती है मुक्तरूप आत्मा को केवल सन्निधिमात्र का ऐश्वर्य है ऐसे सन्निधिमात्र से ऐश्वर्यवान् कहने के लिये हैं अर्थात् सन्निधिमात्र के ऐश्वर्य से मुक्तात्मा की प्रशंसा करती हैं इस से स्तुति रूप रुचि बढ़ाने के लिये हैं और कोई श्रुति जो संकल्पपूर्वक सृष्टि होना आदि प्रतिपादन करती हैं वह अभिमानादियुक्त जो ब्रह्मा विष्णु व हर आदि

अनित्य ईश्वर सिद्ध रूप हैं उन में गौणनित्यत्व आदि मान कर ऐसे सिद्धके उपासना के लिये नित्यत्व आदि को वर्णन करती हैं इस से नित्यत्वादि वर्णन वा ऐसा वर्णन करने वाली श्रुति सिद्ध के उपासना पर वा उपासना विषय में हैं यदि यह शङ्का की जाय कि ईश्वर की असिद्धि से ईश्वर नहीं है यह जो कहा गया है यह युक्त नहीं है कर्म फल दाता होने से ईश्वर सिद्ध होता है तो इसका उत्तर यह है-

नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः अ०५ सू० ॥२॥

ईश्वराधिष्ठिते कारणे कर्मफलरूपपरिणामस्यनिष्पत्तिर्नयुक्ता । आवश्यकेन कर्मणैवफलनिष्पत्तिसम्भवादित्यर्थः ॥२॥ ईश्वरस्य फलदातृत्वमपिनघटतेइत्याह सूत्रैः ॥

अस्य भाषानुवादः ॥

ईश्वर के अधिष्ठित होने में फल की सिद्धि नहीं है कर्म से उस की सिद्धि होने से ॥२॥

ईश्वर के अधिष्ठित होने में कर्मफलरूप परिणाम की सिद्धि मानना युक्त नहीं है क्योंकि आवश्यक कर्म ही से फल की सिद्धि होना संभव है अब ईश्वर का फलदाता होना घटित भी नहीं होता यह अगले सूत्रों में वर्णन करते हैं ॥

स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत् अ० ५ सू० ॥३॥

ईश्वराधिष्ठातृत्वे स्वोपकारार्थमेवलोकवदधिष्ठानं स्यादित्यर्थः ३ भवत्वीश्वरस्याप्युपकारः काक्षतिरित्याशङ्क्याह-

भावार्थः ॥

अपने उपकार से लोक के समान अधिष्ठान (मुख्य होना) होगा ३

जो अपने उपकार के लिये ईश्वर का अधिष्ठाता होना माना जावे तो अपने उपकार से लोक के समान उस का अधिष्ठाता होना सिद्ध होगा यह अर्थ है । अब यह शंका कर के कि ईश्वर का भी वा ईश्वर ही का उपकार होना मानें तो क्या हानि है यह वर्णन करते हैं ॥

लौकिकेश्वरवदितरथा ॥४॥

ईश्वरस्याप्युपकारस्वीकारेलौकिकेश्वरवदेवसोऽपिसंसारीस्यात् अपूर्णकामत्वादुःखादिप्रसङ्गादित्यर्थः ४ तथैवस्वीकारेदूषणान्तरमाह-

भाषानुवादः ॥

अन्य प्रकार मानने में लौकिक ईश्वर के समान होगा ।४।

चेतन मुक्त रूप से अन्य प्रकार मानने में अर्थात् रागयुक्त ईश्वर और उस का अपना उपकार स्वीकार करने में वह भी लौकिक ईश्वर के समान अर्थात् लौकिक ऐश्वर्य को प्राप्त समर्थ राजा महाराजाओं के समान संसारी होगा और अपूर्णकाम होने से उस में भी दुःख आदि होने का प्रसंग होगा । जो ऐसा ही मान लेवें तो उस में अन्य दूषण वर्णन करते हैं ॥

पारिभाषिको वा ॥५॥

संसारसत्त्वेऽपिचेदीश्वरस्तर्हि सर्गाद्युत्पन्नपुरुषेपरिभाषामात्रमस्माकमिवभवतामपि स्यात् । संसारित्वाप्रतिहतेच्छत्वयोर्विरोधान्नित्यैश्वर्यानुपपत्तेरित्यर्थः ईश्वरस्याधिष्ठातृत्वेबाधकान्तरमाह ।

भाषानुवादः ॥

अथवा पारिभाषिक (कथन मात्र भेद वाला) होगा ।५।

जो संसारी होने में भी ईश्वर मानें तो सृष्टि की आदि में उत्पन्न हुये पुरुष में अर्थात् ब्रह्मा में वा विष्णु वा हर में हमारे समान तुम्हारा भी कथन होगा कथन भेदमात्र होगा संसारी होना व नित्य पूर्णकाम होना इन दोनों में विरोध होने से संसारी होने में नित्य ऐश्वर्यवान् होना संभव नहीं होसक्ता ५ ईश्वर के अधिष्ठाता होने में अन्य बाधक होना वर्णन करते हैं ५

न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात् ॥६॥

किञ्चरागंविनानाधिष्ठातृत्वंसिध्यति प्रवृत्तौरागस्यप्रतिनियतकारणत्वादित्यर्थः उपकारश्चेष्टार्थसिद्धिः रागस्तदुत्कटेच्छेति नपौनरुक्त्यम् नन्वेवमस्तुरागोपीश्वरे तत्राह ।

अस्य भाषानुवादः ॥

विना राग के उस की (अधिष्ठाता होने की) सिद्धि नहीं हैं प्रति नियत कारण होने से ६

प्रवृत्ति में राग का प्रतिनियतकारणत्व है जिस कारण के विना जो न होवे वह उस का प्रतिनियत कारण है प्रवृत्ति में राग प्रतिनियत कारण है इस से विना राग के अधिष्ठाता होने की सिद्धि नहीं है उपकार कह कर राग कहने में पुनरुक्त दोष की शंका न करना चाहिये क्यों कि इष्ट अर्थ की सिद्धि

उपकार है अति चाह होना राग है इस से दोनों में भेद है ईश्वर में राग मानने में क्या दोष है यह वर्णन करते हैं ॥

तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः ॥७॥

रागयोगेऽपिस्वीक्रियमाणेसनित्यमुक्तोनस्यात् ततश्चनित्यमुक्तईश्वरोऽस्तीत्यस्यसिद्धान्तस्यहानिःकिञ्चप्रकृतिंप्रत्यैश्वर्य्यप्रकृतिपरिणामभूतेच्छादिना न सम्भवति अन्योऽन्याश्रयात् नित्येच्छादिकं च प्रकृतौ न युक्तं श्रुतिस्मृतिसिद्धसाम्यावस्थानुपपत्तेः । अतः प्रकारद्वयमवशिष्यतेतद्यथाऐश्वर्य्यं किंप्रधानशक्तित्वेनास्मदभिमतानामिच्छादीनांसाक्षादेवचेतनसम्बन्धात् किंवाऽयस्कान्तमणिवत्सन्निधिसत्तामात्रेणप्रेरकत्वादिति ७ तत्राद्यंपक्षंदूषयति ॥

अस्य भाषानुवादः ॥

उस के भी योग में नित्य मुक्त न होगा ॥७॥

राग का योग भी ईश्वर में स्वीकार करने में वह नित्यमुक्त न होगा ऐसा होने में ईश्वर नित्यमुक्त है यह जो सिद्धान्त है इस की हानि होगी जो यह कहा जाय कि प्रकृति के परिणाम रूप इच्छा आदि द्वारा प्रकृति को ऐश्वर्य होना संभव नहीं होता है क्योंकि अन्योऽन्य (परस्पर) आश्रय होने से असंभव है नित्य इच्छादिक प्रकृति में होना युक्त नहीं है क्योंकि ऐसा होने में श्रुति स्मृति में जो प्रकृति की साम्यावस्था (सम होने की अवस्था) सिद्ध है उस का होना असंभव होगा इस से दो प्रकार रहते हैं एक यह कि इच्छा आदि जो हम प्रधान की शक्ति से हुये वा प्रधान की शक्ति रूप मानते हैं उन का साक्षात् चेतन ही से सम्बन्ध होने से ऐश्वर्य्य माना जावे अथवा अयस्कान्त मणि के समान सन्निधिसत्तामात्र से प्रेरक होने से माना जावे इन दो में से प्रत्येक में दोष देखाने में प्रथम पहिले पक्ष में दोष वर्णन करते हैं ॥

प्रधानशक्तियोगाच्चेत्सङ्गापत्तिः ॥८॥

प्रधानशक्तेरिच्छादेः पुरुषेयोगात्पुरुषस्यापिधर्मसंगापत्तिः । तथाच यत्सत्तत्रपश्यत्यनन्वागतस्तेनभवत्यसंगोयंपुरुषइत्यादिश्रुतिविरोधइत्यर्थःअन्त्येआह

भाषानुवादः ॥

प्रधान की शक्ति के योग से है ऐसा माना जाय तो सङ्ग की प्राप्ति होगी ।८।

प्रधान की शक्ति जो इच्छा आदि हैं उन के योग से ऐश्वर्य्य है ऐसा माना जाय तो इच्छा आदि का पुरुष में योग होने से पुरुष में भी धर्मों का सङ्ग होवे से सङ्ग की प्राप्ति होगी ऐसा होने में—

"सयत् तत्रपश्यत्यनन्वागतस्तेनभवत्यसंगोऽयंपुरुषः,,

अर्थ–जिस से कि वह उक्त ज्ञानवान् विवेक को प्राप्त तिस में अर्थात् विवेकप्राप्त होने में आत्मज्ञान होने की अवस्था में अपने आत्मा को प्रकृति से भिन्न देखता है वा जानता है तिस से यह पुरुष असङ्ग सिद्ध होता है इत्यादि श्रुतियों का विरोध होगा यह अर्थ है अब दूसरे पक्ष में उत्तर वर्णन करते हैं–

सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम् ॥९॥

अयस्कान्तवत्संनिधिसत्तामात्रेण चेच्चेतन्यैश्वर्य्यंतर्हिसर्वेषामेवतत्तत्सर्गेषुभोक्तॄणांपुंसामविशेषेणैश्वर्य्यमस्मद्भिप्रेतमेवसिद्धम् अखिलभोक्तृसंयोगादेवप्रधानेनमहदादिसर्जनादिति। ततश्चैकएवेश्वर इतिसिद्धान्तहानिरित्यर्थः ॥९॥ स्यादेतदीश्वरसाधकप्रमाणविरोधेनैतेऽसत्तर्काएव। अन्यथैवंविधासत्तर्कसहस्रैःप्रधानमपिबाधितुंशक्यतेइतितत्राह–

भाषानुवादः ॥

सत्ता मात्र से है ऐसा माना जाय तो सब का ऐश्वर्य्य होगा ॥ ९ ॥

जो अयस्कान्त (चुम्बक) के समान संनिधिसत्तामात्र से चेतन का ऐश्वर्य माना जाय तो विशेषतारहित सभी भोक्ता पुरुषों का जैसा हम मानते हैं ऐश्वर्य्य सिद्ध होवेगा क्योंकि सम्पूर्ण भोक्ताओं के संयोग ही से प्रधान से महत्तत्व आदि उत्पन्न किये जाते हैं। ऐसा होने में एक ईश्वर है इस सिद्धान्त की हानि है ॥९॥ जो यह कहा जाय कि ऐसा ही हो ईश्वर के सिद्ध करने वाले प्रमाणों के विरोध से यह तर्क असत् ही है ऐसे ही सहस्रों असत्तर्कों से प्रधान का भी प्रतिषेध होसक्ता है इसका उत्तर यह है–

प्रमाणाभावान्नतत्सिद्धिः ॥१०॥

तत्सिद्धिर्नित्येश्वरेतावत्प्रत्यक्षंनास्तीत्यनुमानशब्दावेवप्रमाणेवक्तव्येतेच न संभवत इत्यर्थः १० इदमेव (असंभवमेव) प्रतिपादयतिसूत्राभ्याम्

भाषानुवादः ॥

प्रमाण के अभाव से उस की सिद्धि नहीं हैं १०

प्रमाण न होने से उस की अर्थात् नित्य ईश्वर की सिद्धि नहीं होती है प्रमाण के अभाव कहने का तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है प्रत्यक्षमूलक ही अनुमान व शब्द प्रमाण होने से उनका भी होना सम्भव नहीं होता इसी को अगले दो सूत्रों में स्पष्ट वर्णन करते हैं–

सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ॥११॥

सम्बन्धोव्याप्तिः अभावोऽसिद्धिः तथा च महदादिकंसकर्तृकंकार्यत्वादित्याद्यनुमानेष्वप्रयोजकत्वेनव्याप्यत्वाऽसिद्धेर्नेश्वरानुमानमित्यर्थः प्रत्यक्षमूलाव्याप्तिःप्रत्यक्षाभावेव्याप्त्यसिद्धेरनुमानस्याप्यभावः ११ नापिशब्दइत्याह—

भाषानुवादः ॥

सम्बन्ध के अभाव से अनुमान नहीं हैं ॥११॥

सम्बन्ध का अर्थ यहां व्याप्ति है अभाव का अर्थ असिद्धि है जैसा कार्य कारण सम्बन्ध वा व्याप्ति द्वारा ऐसा अनुमान होता है कि महत्तत्व आदि सकर्तृक है (कर्ता कारण सम्बन्धी हैं) कार्य होने से, इत्यादि अनुमानों में प्रयोजक (प्रेरणकर्ता) न होने से व्याप्य होने की सिद्धि न होने से ईश्वर में अनुमान नहीं है अथवा व्याप्ति प्रत्यक्षमूलक ही होती है प्रत्यक्ष के अभाव में व्याप्ति की असिद्धि होने से अनुमान का भी अभाव है ११ अब शब्द प्रमाण के निषेध को वर्णन करते हैं ॥

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ॥१२॥

प्रपञ्चे प्रधानकार्यत्वस्यैवश्रुतिरस्तिनचेतनकारणत्वस्ययथाऽजामेकांलोहितशुक्लकृष्णांबह्वीः प्रजाः सृजमानांसरूपाः । तद्धेदंतर्ह्यव्याकृतमासीत् तन्नामरूपाभ्यांव्याक्रियतेइत्यादिरित्यर्थः याच तदैक्षतबहुस्यामित्यादिचेतनकारणताश्रुतिः सासर्गाद्यावुत्पन्नस्यमहत्तत्त्वोपाधिकस्यमहापुरुषस्यजन्यज्ञानपराकिंवाबहुभवनानुरोधात् प्रधानएवकूलंपिपतिषतीतिवद्गौणीअन्यथासाक्षीचेताकेवलोनिर्गुणश्चेत्यादिश्रुत्युक्ताऽपरिणामित्वस्यपुरुषेऽनुपपत्तेरिति॥ अधुनैतद्दर्शनं समीक्ष्यतेएतेषु सूत्रेषु यदीश्वरप्रतिषेधउक्तः तत्तर्केणासिद्धिंदर्शयित्वालौकिकमेवबाधकंप्रतिपादितमित्येवावधेयम्नसर्वथेश्वरास्तित्वप्रतिषेधस्याशयोमन्तव्यःयतईश्वरासिद्धेरित्यस्मात्प्राक्सूत्रैःसम्बन्धविचारतोऽनुवृत्तिग्रहणाच्चायमेवाशयस्सांख्याचार्यस्य महात्मनः सम्यग्निर्णीयतेतदमेनव्याख्यानेनावधार्यम्अतः प्राग्विवेकज्ञानस्यसाक्षादुपायः प्रमाणान्येवसन्तीत्यभिप्रायेणप्रत्यक्षानुमानशब्दभेदेनत्रिविधंप्रमाणमितिकथनानन्तरंप्रमाणानांविशेषलक्षणवर्णनेप्रत्यक्षस्यव्याख्यानोपक्रमेतस्यैतल्लक्षणमुक्तम्—

अस्य भाषानुवादः ॥

श्रुति भी प्रधान के कार्य की है अर्थात् प्रधान के कार्य वर्णन विषय में है १२ प्रपञ्च में (सृष्टि प्रपञ्चमें) प्रधान ही के कार्य विषय में श्रुति है चेतन के

प्रतिपादन में नहीं है श्रुति यह है ॥

अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः
अजोह्येको जुषमाणोऽनुशते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥

अर्थ—एक अजा (उत्पत्ति रहित प्रकृति) लोहित शुक्ल कृष्ण रूप को अर्थात् रज सत्व तम गुण रूप को अपने रूप के समान बहुत प्रजाओं को उत्पन्न करने वाली को एक अज (पुरुष) उस के साथ प्रीति करता हुआ शयन करता है अर्थात् भोग करता है और अन्य अज भोग कर के विराग को प्राप्त हुआ इस भोग की हुयी अजा को त्याग देता है तथा—

तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यां व्याक्रियते इत्यादि ॥

अर्थ—वह यह प्रकृति कार्य रूप प्रत्यक्ष जगत् पूर्व ही नाम रूप रहित अप्रकट था वह सृष्टि समय में नाम रूप से प्रकट किया जाता है अर्थात् प्रकृति से प्रकट किया जाता है इत्यादि और जो

तदैक्षत वहुस्याम० इत्यादि ॥

अर्थ—उस ने इच्छा किया कि बहुत होऊं इत्यादि चेतन कारण प्रतिपादक श्रुतियां हैं वह सृष्टि की आदि में उत्पन्न महत्तत्व उपाधिक महापुरुष के उत्पन्न हुये ज्ञान के विषय में हैं अथवा बहुत होने में उदित प्रधान ही में शीघ्र गिरने वाले कगार में कगार गिरने की इच्छा करता है ऐसा कहने के समान इच्छा वर्णन करने वाली श्रुति गौणी है अन्यथा—

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

अर्थ—पुरुष साक्षी चेतन केवल निर्गुण है इत्यादि श्रुति में जो पुरुष का परिणामी न होना कहा है वह पुरुष में होना संभव न होगा ॥ अब इस वर्णन की समीक्षा की जाती है इन सूत्रों में जो ईश्वर का प्रतिषेध कहा गया है वह तर्क से असिद्धि को (सिद्धि न होने को) देखा कर लौकिक ही बाधक होना प्रतिपादन किया गया है यही मानना चाहिये सर्वथा ईश्वर के अस्तित्व प्रतिषेध करने का आशय नहीं स्वीकार करना चाहिये क्योंकि "ईश्वरासिद्धेः" इस सूत्र से पहिले वर्णन किये गये सूत्रों के साथ पूर्व से सम्बन्ध विचारने व अनुवृत्तिग्रहण करने से महात्मा सांख्याचार्य का यही आशय अच्छे प्रकार से निश्चय किया जाता है यह इस व्याख्यान से निश्चय करना चाहिये कि इस निषेध वर्णन से पहिले से विवेक ज्ञान के साक्षात् उपाय प्रमाण ही हैं इस अभिप्राय से प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द भेद से तीन प्रकार का प्रमाण है

यह कहने के पश्चात् प्रमाणों के विशेष लक्षण वर्णन करने में प्रत्यक्ष के व्याख्यान के प्रारम्भ में प्रत्यक्ष का ऐसा लक्षण वर्णन किया है ॥

यत्सम्बद्धं सत्तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् अ०१ स०८९

इन्द्रियेणसहयत्सम्बद्धमर्थाद्व्यवहितसम्बन्धप्राप्तंनिर्दोषंयथार्थरूपं वस्तु तस्ययत्तदाकारोल्लेखिभ्रमविकाररहितं तत्स्वरूपधारिविज्ञानं तत्प्रत्यक्षंप्रमाण-मित्यर्थः ८९ ननुलौकिकजनानामेवप्रत्यक्षएतल्लक्षणस्यव्याप्तित्वंयोगिनामतीता-नागतव्यवहितवस्तुप्रत्यक्षेऽव्याप्तिः सम्बद्धवस्त्वाकाराभावादित्याशङ्क्यतस्या-लक्ष्यत्वेनसमाधत्ते ॥

अथ भाषानुवादः

जो सम्बद्ध (सम्बन्ध को प्राप्त) सत् (यथार्थ रूप से विद्यमान) है उस का जो तदाकारोल्लेखि विज्ञान वह प्रत्यक्ष है ॥ ८९ ॥

इन्द्रिय वा इन्द्रियों के साथ जो सम्बद्ध है अर्थात् व्यवधानरहित सम्बन्ध को प्राप्त निर्दोष यथार्थ रूप वस्तु है उस का जो तदाकारोल्लेखि अर्थात् भ्रम व विकाररहित तत्स्वरूप धारण करने वाला जो विज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ ८९ ॥

अब यह शङ्का करके कि लौकिक जनों ही के प्रत्यक्ष में इस लक्षण की व्याप्ति है अर्थात् उन ही के प्रत्यक्ष तक इस की सीमा है योगियों को भूत भविष्यत् व व्यवहित भी प्रत्यक्ष होता है विना इन्द्रिय सम्बन्ध हुये योगियों के प्रत्यक्ष में इस लक्षण की व्याप्ति नहीं है क्योंकि सम्बद्ध वस्तु के आकार का अभाव है। समाधान वर्णन करते हैं ॥

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ॥ ९० ॥

ऐन्द्रियकप्रत्यक्षमेवात्रलक्ष्यंयोगिनश्चाबाह्यप्रत्यक्षकाः अतोनदोषोनतत्प्र-त्यक्षेऽव्याप्तिरित्यर्थः ९० वास्तवसमाधानमाह ॥

अस्य भाषानुवादः

योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष होने से दोष नहीं है ९०

इस में ऐन्द्रियक (इन्द्रिय से हुआ वा इन्द्रियसम्बन्धी) प्रत्यक्ष ही लक्ष्य है योगी जन अबाह्य वस्तु के प्रत्यक्ष करने वाले होते हैं इस से दोष नहीं है उन के प्रत्यक्ष में इस की अव्याप्ति का दोषारोपण करना युक्त नहीं है वास्तव समाधान को वर्णन करते हैं ॥

लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वादोषः ॥९२॥

अथवा तदपिलक्ष्यमेवतथापिनदोषोनाव्याप्तिःयतोलीनवस्तुषु लब्धयोगजधर्मजन्यातिशयस्ययोगिचित्तस्य सम्बन्धोघटतइत्यर्थः अत्रलीनशब्दःपराभिप्रेतासन्निकृष्टवाची, सत्कार्यवादिनां ह्यतीतादिकमपिस्वरूपतोऽस्तीतितत्सम्बन्धःसम्भवेदितिव्यवहितविप्रकृष्टेषु सम्बन्धहेतुविधयालब्धातिशयेतिविशेषणम् अतिशयश्चव्यापकत्ववृत्तिप्रतिबन्धकतमोनिवृत्त्यादिश्चेतिअस्मिन्सूत्रेवाअदोषःएवंपदच्छेदात्नदोषःअयमर्थोगृह्यतेयोगिनामवाह्यप्रत्यक्षेलौकिकजनबुद्ध्याप्रत्यक्षस्याव्याप्तावपिनदोषःवाव्याप्तिरस्त्येवातोऽदोषः इतिकथनादिदंविज्ञापितं लौकिकजनाः स्वैन्द्रियकज्ञान तर्काभ्यां सर्वपदार्थान्प्रमातुंयथार्थंज्ञातुंवानशक्नुवन्तिनवाह्येन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यमात्रज्ञानप्राप्तानां लौकिकजनानांबाह्यविषयकेन्द्रियकज्ञानोद्भवतर्कस्यप्रतिष्ठात्वमस्तियतोलोकएवयोगसाधनेनसामर्थ्यविशेषप्राप्तानां योगिनां यद्वाह्यप्रत्यक्षत्वंतत्रप्रत्यक्षस्यव्याप्त्यभावेऽनुमानस्याप्यसम्बन्धान्नतर्कस्यविषयोभवितुमर्हतिपरन्तुप्रत्यक्षस्याव्याप्तौतर्केणासिद्धौसत्यांनयोगिनामवाह्यप्रत्यक्षत्वस्यासत्यत्वंतस्येन्द्रियकप्रत्यक्षस्याविषयत्वात्अतोनदोषः योगिनामवाह्यप्रत्यक्षवदीश्वरोऽपिप्रत्यक्षतन्मूलकानुमानयोरविषयत्वेनतर्केणासाध्योऽस्त्यतस्तस्यासिद्धेरपिनदोषइतिवक्तुमाशयेनाह ॥९१ ॥

अस्य भाषानुवादः

अथवा लीन वस्तु में प्राप्तहुये अतिशय सम्बन्ध से दोष नही है ॥९१ ॥

अथवा जो उन का प्रत्यक्ष भी लक्ष्य ही माना जावै तौ भी दोष नहीं है न अव्याप्ति है क्योंकि योग से उत्पन्न हुये धर्म से अतिशय सामर्थ्यवान् योगी के चित्त का लीन वस्तुओं में सम्बन्ध होता है उस से योगी को उन का प्रत्यक्ष होता है इस से दोष नहीं है यहां लीन शब्द जो वस्तु सन्निकृष्ट नहीं अर्थात् वाह्य इन्द्रिय वा लौकिक जनों के इन्द्रियों से सम्बन्ध को प्राप्त नहीं है उस का वाचक है सत्कार्यवादियों के मत में जो पदार्थ भूतकाल में हो गये हैं वा जो होने वाले हैं वह सब कारणवस्तु में विद्यमान ही हैं इस से उन का सम्बन्ध सम्भव है इस से व्यवहित (व्यवधान को प्राप्त) व विप्रकृष्ट (दूरदेश में प्राप्त) वस्तुओं में सम्बन्ध होने योग्य होने से प्राप्त "अतिशय" यह विशेषण कहा है व्यापक होने की वृत्ति के रोकने वाले तम वा अज्ञान का निवृत्त होना अतिशय है इस सूत्र में वादोषः शब्द का वा अदोषः ऐसा

पदच्छेद करने से दोष नहीं है यह अर्थ ग्रहण किया जाता है कि योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष में लौकिक जनों की बुद्धि से प्रत्यक्ष की व्याप्ति न होने में भी दोष नहीं है अथवा व्याप्ति है इस से दोष नहीं है। यह कहने से यह विज्ञापित किया है कि लौकिक जन अपने इन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञान व तर्क से सब पदार्थों के प्रमाण करने व यथार्थ जानने को समर्थ नहीं हो सक्ते और न बाह्य इन्द्रिय व अर्थ के सन्निकर्ष से जन्य (उत्पन्न होने योग्य) मात्र ज्ञान को प्राप्त हुये लौकिकों के बाह्य ही है विषय जिस का ऐसे इन्द्रिय सम्बन्धीज्ञान से उत्पन्न हुये तर्क की प्रतिष्ठा है क्योंकि लोक ही में योगसाधन से विशेष सामर्थ्य को प्राप्त हुये जो योगीजन हैं उन का जो अबाह्य प्रत्यक्ष करने का सामर्थ्य है उस में लौकिक प्रत्यक्ष की व्याप्ति का अभाव होने में अनुमान का भी सम्बन्ध न होने से वह तर्क का विषय नहीं हो सक्ता न तर्क से उस की सिद्धि हो सक्ती है परन्तु प्रत्यक्ष की व्याप्ति न होने व तर्क से सिद्ध न होने में योगियों के अबाह्य प्रत्यक्षत्व की असत्यता नहीं होती क्योंकि वह ऐन्द्रियक प्रत्यक्ष का विषय नहीं है इस से लौकिक प्रत्यक्ष में दोष व लौकिक प्रत्यक्ष से असम्भव ज्ञात होने से योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष में दोष नहीं है योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष के समान ईश्वर भी प्रत्यक्ष व प्रत्यक्षमूलक अनुमान का विषय न होने से तर्क से साध्य नहीं है इस से उस की सिद्धि न होने से भी दोष नहीं है यह कहने के अभिप्राय से यह कहा है—

ईश्वरासिद्धेः ९२ ॥

ईश्वरासिद्धेः इत्यपूर्णवाक्यतयापूर्तिमपेक्षतेपूर्वान्नदोषइत्यनुवर्ततेऽनुवृत्त्या पूर्त्यनन्तरमीश्वरासिद्धेर्नदोषइतिसूत्रवाक्यं जायतेऽस्याशयः पूर्वोक्तोऽपिविशेषेणात्रवर्ण्यतेयथायोगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वे लौकिकप्रत्यक्षस्याव्याप्तौ तर्कस्याप्राप्तौ वा तर्केणासिद्धावपिवास्तवेनतस्यसिद्धत्वान्नदोषः एवलौकिकतर्केणप्रत्यक्षादिप्रमाणेनवाईश्वरस्यासिद्धेर्नदोषः ईश्वरस्यापितत्त्वज्ञानं योगिनामबाह्यातीतानागतव्यवहितवस्तुप्रत्यक्षवद्योगिनएवप्राप्नोतीत्यर्थः इदन्तुलोकेऽप्यनुभूयते यत्किञ्चित्पण्डितेनज्ञातंसिद्धं वस्तुयदिबालकस्तत्स्वबुद्ध्याविचारेणवाज्ञातुन्न शक्नोतितस्यबालकबुद्ध्याऽसिद्धत्वाद्दोषो न भवति न च तस्यमिथ्यात्वंजायते तत्तुसिद्धंविद्यतएवएवं लौकिकतर्केणासिद्धावपीश्वरस्यास्तित्वं नप्रतिषिध्यतेऽयमेवाशयस्साङ्ख्याचार्यस्य महर्षेरवधार्यो नान्यथायद्ययमेवाशयो न स्यात्तर्हीश्वराभावादित्येवोच्येततृतीयाध्यायेस्वयमेवाचार्य्येण सहिसर्ववित्सर्वकर्त्ता सू० ५६

'इदृशेश्वरसिद्धिःसिद्धा ५७' एवमोच्येत अर्थात् आभ्यां सूत्राभ्यां सन्निधिमात्रेणनिमित्तकारणसर्वज्ञसर्वकर्तृप्रकारकमीश्वरंस्वीकृत्यतस्यसङ्कल्पपूर्वककर्तृत्वमुपादानकारणत्वञ्चप्रतिषेधितवान्सांख्याचार्यःअन्यच्च पञ्चमाध्याये समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता सू० ११६ इत्युक्तवान् अत्र भाष्यादिषु जीवात्मनोब्रह्मरूपत्वंस्वीकृतमतोऽपिजीवात्परोब्रह्मणस्स्वीकारोवगम्यतेननुनेश्वरः इति सूत्रशेषः इतिमत्वा ईश्वरासिद्धेर्नेश्वरएवं सूत्रार्थोवाच्यःइतिवदेन्नैवंवाच्यंव्याकरणेऽन्येषु च सर्वदर्शनग्रंथेषुपूर्वसूत्रात्परसूत्रेप्राप्यानुवृत्तिर्गृह्यतेपूर्वसम्बन्धेन ग्राह्यानुवृत्तिंपरित्यज्यशास्त्रशैलीविरुद्धस्वकल्पनयाऽऽक्षेपेण व्याख्यानमाग्रहभूतमसङ्गतमप्रमाणरूपमित्यवधेयमस्तिननुकार्येणकारणं कर्मणाकर्तेत्यनुमीयतएव अतोजगत्कार्येणतत्कारणेश्वरस्यानुमानंभवत्यतः प्रमाणतर्काभ्यामीश्वरो न सिद्ध्यतिनैवंवाच्यमितिपूर्वपक्षनिराकरणार्थं स्वपक्षसिद्ध्यर्थमग्रिमसूत्रैस्तर्केणासिद्धिप्रदर्शनार्थमाह बद्धमुक्तयोरन्यतराभावान्नतत्सिद्धिरित्यादिइतिराधान्तः प्रयोजनमात्रमर्थात् साङ्ख्याचार्यस्यसर्वथेश्वरप्रतिषेधस्यानाशयत्वमात्रमत्रप्रतिपादितं ईश्वरविषयेविशेषज्ञानमस्मन्निर्मितवेदान्तभाष्यदर्शनादवगन्तव्यमिति इतीश्वरविषये सांख्यसूत्राणांव्याख्यानेश्रीमत्पण्डितप्रभुदयालुनिर्मितेसमीक्षाकरेतृतीयोऽध्यायः ३ ॥

अस्यभाषानुवादः ॥

ईश्वर की सिद्धि न होने से ॥

ईश्वर की सिद्धि न होने से यह वाक्य अपूर्ण है इस से इस में पूर्णता की आवश्यकता है पूर्व सूत्र से दोष नहीं है यह अनुवृत्ति से ग्रहण किया जाता है अनुवृत्ति से वाक्य पूर्ण करने पर ईश्वर की सिद्धि न होने से दोष नहीं है ऐसा सूत्र वाक्य होता है इस का आशय पूर्व ही वर्णन किया गया है तथापि यहां विशेषता से वर्णन किया जाता है जैसे योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष होने में लौकिक प्रत्यक्ष की व्याप्ति न होने वा तर्क से सिद्ध न होने पर भी वास्तव में उसकी सत्यता होने से दोष नहीं है ऐसे ही लौकिक तर्क से व प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से ईश्वर की सिद्धि न होने से दोष नहीं है ईश्वर का भी तत्त्वज्ञान योगियों के अबाह्य अतीत अनागत (भूत भविष्यत्) व व्यवहित वस्तुओं के प्रत्यक्ष के समान योगी ही को प्राप्त होता है यह आशय है और लोक में ऐसा अनुभूत होता है कि कोई वस्तु जो पण्डित ज्ञानवान् की बुद्धि में सिद्ध व निश्चित है उसको जो बालक अपनी बुद्धि व अपने विचार से न जान सकने से असिद्ध समझता है तो बालक की बुद्धि से असिद्ध होने से दोष नहीं

होता है न उस वस्तु की असत्यता होती है वह तो सिद्ध विद्यमान ही है ऐसे ही लौकिक तर्क से असिद्ध होने पर भी ईश्वर के अस्तित्व का प्रतिषेध नहीं होता यह आशय महर्षि साङ्ख्याचार्य का निश्चय करने योग्य है अन्यथा नहीं क्योंकि जो यही आशय न होता तो ईश्वराभावात् ऐसा कहते अर्थात् ईश्वर की सिद्धि न होने से ऐसा न कहते ईश्वर के अभाव से अर्थात् न होने से ऐसा कहते और तीसरे अध्याय में आप ही सांख्याचार्य ने जो ऐसा वर्णन किया है-

सहिसर्ववित्सर्वकर्त्ता सू० ५६ ॥ ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ॥५७॥

अर्थ-वह सब जानने वाला सब करने वाला है ५६ ऐसे ईश्वर की सिद्धि सिद्ध है ५७ ऐसा वर्णन न करते अर्थात् इन सूत्रों से सन्निधिमात्र से निमित्त कारण सर्वज्ञ व सब करनेवाला ईश्वर को स्वीकार करके उसके सङ्कल्प पूर्वक कर्त्ता होने और उपादान कारण होने का प्रतिषेध किया है और पांचवें अध्याय में यह कहा है-

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ॥

अर्थ-समाधिसुषुप्ति व मोक्षों में ब्रह्म रूपता होती है सू० ११६ अर्थात् समाधि आदि में जीवात्मा को ब्रह्म रूपता प्राप्त होती है अर्थात् ब्रह्म के समान शुद्ध चेतन रूप इन्द्रियसम्बन्धरहित होता है इस से भी जीव से पर ब्रह्म को स्वीकार करना सिद्ध होता है जो यह कहा जाय कि ईश्वर नहीं है यह सूत्र में शेष है ऐसा मान कर ईश्वर की सिद्धि न होने से ईश्वर नहीं है ऐसा सूत्र का अर्थ कहना चाहिये तो ऐसा कहना अयुक्त है क्योंकि व्याकरण और अन्य सब दर्शन ग्रंथों में पूर्व सूत्र से पर सूत्रों में प्राप्य अनुवृत्ति का ग्रहण किया जाता है सम्बन्ध से ग्रहण करने योग्य अनुवृत्ति को त्यागकरके शास्त्र की शैली के विरुद्ध अपनी कल्पना से आक्षेप करके व्याख्यान करना आग्रह रूप असंगत अप्रमाण रूप ही निश्चय करने योग्य है। जो यह कहा जावे कि कार्य से कारण व कर्म से कर्त्ता अनुमान किया जाता है इससे जगत् कार्य को देखकर उस के कारण व कर्त्ता ईश्वर का अनुमान सम्भव होता है इस से प्रमाण व तर्क से ईश्वर नहीं सिद्ध होता है ऐसा न कहना चाहिये इस पूर्वपक्ष के निराकरण (खण्डन) के लिये और अपना पक्ष सिद्ध करने के लिये अगले सूत्रों से तर्क से ईश्वर की असिद्धता देखाने का प्रतिपादन के प्रयोजन से यह वर्णन किया है ॥

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः ॥

इत्यादि यह सिद्धान्त है यहां प्रयोजन मात्र अर्थात् सांख्याचार्य का सर्वथा ईश्वर के प्रतिषेध करने का आशय न होना मात्र कहा गया है। ईश्वर विषय में विशेष ज्ञान हमारे निर्माण किये हुवे वेदान्त भाष्य से प्राप्त करना चाहिये—

इतिश्रीमत्पण्डित प्रभुदयालुनिर्मितेसमीक्षाकरे ईश्वरविषये सांख्यसूत्राणां व्याख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथवेदान्तसूत्रविशेषाणां प्रायआधुनिकभाष्यटीकाकारैः कृतायुक्तव्याख्यानस्य समीक्षाप्रारभ्यतेवेदान्तदर्शनस्यप्रथमाध्यायस्यप्रथमपादे एकविंशतिसंख्यकमिदंसूत्रम् ॥

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥

शांकरभाष्येश्रीशंकराचार्यैः कृतमस्यसूत्रस्येदं व्याख्यानं इदमाम्नायतेछान्दोग्ये " अथयएषोन्तरादित्येहिरण्मयः पुरुषोदृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्वएवसुवर्णः तस्ययथाकप्यासंपुण्डरीकमेवमक्षिणीतस्योदितिनाम स एषसर्वेभ्यः पाप्मभ्यउदितउदितिहवैसर्वेभ्यः पाप्मभ्यःयएवंवेद " तत्रसंशयः किंविद्याकर्मातिशयात्प्राप्तोत्कर्षः कश्चित्संसारीजीवः सूर्यमण्डलेचक्षुषिचोपास्यत्वेनश्रूयतेकिंवानित्यसिद्धःपरमेश्वरः किन्तावत्प्राप्तंसंसारीतिकुतः रूपवत्वश्रवणात् यएषोन्तरादित्येहिरण्मयइत्यादि श्रुतिवाक्यात् नचपरमेश्वरस्यरूपवत्त्वं युक्तं "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इतिश्रुतेः अनाधारस्यतस्यसर्वाधाररूपस्ययएषोन्तरादित्येयएषोन्तरक्षणिइत्याधारश्रवणाच्च, एवंपूर्वपक्षसंस्थापनानन्तरमिदमुत्तरमुक्तम् परमेश्वरएवअन्तरादित्येअक्षणिचोपास्यः न संसारीकुतः तद्धर्मोपदेशात् तस्यपरमेश्वरस्यधर्माइहोपदिष्टास्तद्यथातस्योदितिनामइतिश्रावयित्वाअस्यादित्यस्यपुरुषस्यनामसएषसर्वेभ्यः पाप्मभ्यउदितः इतिसर्वपापापगमेननिर्वक्ति सर्वपाप्मापगमश्चपरमात्मनएवश्रूयतेय। आत्माअपहतपाप्माइत्यादौ इत्यादिहेतुभिः परमात्माएवउपास्यइतिस्थितं यएषोन्तरादित्येइत्यादि, अस्याः श्रुतेरयमर्थः आदित्येअन्तरक्षणिचहिरण्मयः प्रकाशमयः हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशः प्रकाशमयः श्मश्रुर्यस्यप्रकाशमयः प्रकाशरूपोवाकेशोयस्य आप्रणखात्सर्वएव सुवर्णः प्रकाशरूपःयःपुरुषः दृश्यतेतस्ययथाकप्यासंपुण्डरीकमेवमक्षिणी अर्थात् कंजलंपीयते (पीङ्पाने इतिधातोः) इतिकपीनपुंसकलिङ्गत्वाद्ध्रस्वत्वेकपि, आस्तेइत्यासंकपिचतदासंकप्यासमर्थात्स्वमूलनालाभ्यांजलंपीयतेकोऽर्थः पिब-

त्यर्थात्ताभ्यां जलं पीत्वाद्रत्वंप्रफुल्लनञ्चप्राप्तमस्तितदेववास्तंयत्तत्कप्यासमी दृशंपुण्डरीकमर्थात्मस्वनालाच्छिन्नमनार्द्रं शोभाह्रास्यप्राप्तं किन्तुनालस्थपूर्णं शोभाप्राप्तंपुण्डरीकंयथाएवंतस्यपुरुषस्याक्षिणीयद्वाकंजलंआसउपवेशनइतिधातुरपिपूर्वकः वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोरितिवचनादपेरकारलोपः कप्यासंसलिलस्थमित्युक्तंभवतिअथवासूर्यः स्वकिरणैर्जलमाकर्षत्यतः कपिःसूर्यः तस्यासंमण्डलंयथाआदित्यमण्डलंहृदयपुण्डरीकञ्चपरमात्मनउपासनस्थानंतथा तस्योपासकस्याक्षिणीतस्योदितिनामतस्यपुरुषस्यउदितिनामउलुङ्ङतिनामेत्यर्थः उन्नामनिर्वक्तिसएषसर्वेभ्यः पाप्मभ्यउदितः उद्गतः सर्वपाप्माऽस्पृष्टइत्यर्थः शांकरभाष्यटीकायां श्रीगोविन्दानन्देनतस्ययथाकप्यासंपुण्डरीकमेवमक्षिणी इत्यस्यश्रुतिवाक्यावयवस्यायमर्थउक्तः तस्येतिकपेर्मर्कटस्यासंपुच्छभागोत्यन्ततेजस्वीतत्तुल्यं पुण्डरीकं यथादीप्तिमदेवंतस्यपुरुषस्याक्षिणीसद्योविकसितरक्तांभोजनयनइत्यर्थःनायमर्थोग्राह्यः वीभत्सार्थापत्तेरन्योत्तमोपमाकथमेश्रुतिवक्तुरक्षमत्वावगमात्रक्तवर्णातिरिक्तान्यवर्णावस्थमपिकपेर्मुखासयोः संभवात्पुण्डरीकशब्दस्यसितांभोजेनियतत्वादसंगतेरनुत्तमत्वादिति ॥

अनुकृतेस्तस्य च अ० १ पा० ३ सू० २२ ॥

वेदान्तदर्शनेप्रथमाध्यायेतृतीयपादेदहराधिकरणेअर्थात् हृदयपुण्डरीकस्थामस्यदहरशब्दवाच्यस्योपासनवर्णनेदहरउत्तरेभ्यः इत्यारभ्यानुकृतेस्तस्य च एतत्सूत्रपर्यन्तं विमृश्यहेतुभ्योदहराकाशशब्देन परब्रह्मएवोपास्यम् इत्यवधारितं दहरउत्तरेभ्यः इत्यस्यायमर्थः दहराकाश परब्रह्मकुतःउत्तरेभ्योवाक्यगतेभ्योहेतुभ्यः एषआत्माऽपहतपाप्माविजरोविमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोऽपिपासस्सत्यकामःसत्यसङ्कल्पइतिनिरुपाधिकात्मत्वमपहतपाप्मत्वादिकंसत्यकामत्वं सत्यसङ्कल्पत्वंचेतिदहराकाशे श्रूयमाणागुणादहराकाशं परं ब्रह्मेतिज्ञापयन्तिइत्यादिनिरूपणानन्तरमुपसंहारेअनुकृतेस्तस्यच २५ "अपिस्मर्यते" २२ इमेसूत्रेउक्तेस्तः तत्रानुकृतेस्तस्यचअस्यायमर्थः तस्यदहराकाशस्यपरब्रह्मणोऽनुकारादपहतपाप्मत्वादिगुणकोविमुक्तबन्धःप्रत्यगात्मानदहराकाशः तदनुकारस्तत्साम्यंतथाहि प्रत्यगात्मनोविमुक्तस्यपरब्रह्मानुकारःश्रूयतेयदापश्यःपश्यतिरुक्मवर्णंकर्तारमीशं पुरुषंब्रह्मयोनिंतदाविद्वान्पुण्यपापेविधूयनिरञ्जनः परमं साम्यमुपैतीतिअतोऽनुकर्ताप्रजापतिवाक्यनिर्दिष्टःजीवःअनुकार्यंब्रह्मदहराकाशःकेचित् अनुकृतिरनुभानमित्युक्त्वाअनुकृतेस्तस्य च अपिस्मर्यतेइतिसूत्रद्वयमधिकरणान्तरं तन्मेव

भान्तमनुभातिसर्वंतस्यभासासर्वमिदंविभातीत्यस्याःश्रुतेःपरब्रह्मपरत्वनिर्णयाय
प्रवृत्तंवदन्तितत्तु " अदृश्यत्वादिगुणकोधर्मोक्तेः " द्युभ्वाद्यायतनंस्वशब्दात् "
इत्यधिकरणद्वयंनतस्यप्रकरणस्य] परब्रह्मविषयत्वप्रतिपादनात्ज्योतिश्चरणा-
भिधानादित्यादिषुपरस्यब्रह्मणोभारूपत्वावगतेश्चपूर्वपक्षानुत्थानादयुक्तं सूत्रा-
क्षरवैरूप्यंचअर्थात् अनुकृतिरनुभानमितिकथनमयुक्तंकरोतिभात्योरेकार्थत्वाभा-
वात् अस्मिन्नेवपादेब्रह्मविद्याधिकारनिरूपणेशूद्रस्याधिकारनिरूपणविषयक-
निम्नोक्तानिसूत्राणिसन्ति—

शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदाद्रवणात्सूच्यते हि ॥३४॥

अस्य व्याख्यानम्

देवादीनामपिब्रह्मविद्यायामधिकारंनिरूप्यशूद्रस्यापितस्यामधिकारोस्ति-
वानास्तीतिविचार्यतेकिंयुक्तमस्तीतिअर्थित्वसामर्थ्यप्रयुक्तत्वादधिकारस्यशूद्र-
स्यापितत्संभवात् इतिहासपुराणेषुविदुरादयस्तपोनिष्ठास्तथाछान्दोग्योपनिष-
द्यपिसंवर्गविद्यायां शूद्रस्यापिब्रह्मविद्याधिकारः प्रतीयतेशुश्रूषुंहिजानश्रुतिमा-
चार्योरैक्वः शूद्रेत्यामन्त्र्यप्रतिस्मब्रह्मविद्यामुपदिशतिस्मआजहारेमाःशूद्रइत्यादि-
अतःशूद्रस्याप्यधिकारोविज्ञायतेइत्येवंप्राप्तेमस्वर्गविद्यायांरैक्वस्यजानश्रुतिंप्रति
हेशूद्रइतिकथनंनजानश्रुतेः शूद्रवर्णत्वंहेतुतोऽवधार्ययतस्तस्यशूद्रत्वमवगच्छेदि-
तिप्रतिपादनायेदमाहशुगस्येत्यादिअस्यसूत्रवाक्यस्यायमर्थः तदनादरश्रवणात्
कोर्थःतेषांहंसानांतेभ्योहंसेभ्योवाअनादरश्रवणात्अस्यजानश्रुतेःशुक्अर्थात् शु-
गुत्पन्नातामृषीरैक्वःजानश्रुतिंप्रतिहेशूद्रआजहारेमाःशूद्रइत्यत्रशूद्रशब्देनसूचितवा-
नृस्वपरोक्षज्ञानस्य विज्ञापनायेतिगम्यते अतोरैक्केणोक्तशूद्रशब्देन जानश्रुतेः शुक्
(शोकः) सूच्यतेकथं पुनःशूद्रशब्देनशुगुत्पन्नासूच्यतेइत्युच्यतेतदाद्रवणात् शुचमा-
द्रवणात् शुचावारैक्वमभ्याद्रवणात् जानश्रुतिस्तेषांहंसानांतयोर्हंसयोर्वावचनं श्रु-
त्वाशुचमभिदुद्रावशुचावारैक्वमभिदुद्रावेतिशूद्रावयवार्थसंभवात् शुचेर्दश्चइतिरप्र-
त्ययेधातोश्वदीर्घेचकारस्यदकारेशूद्रइतिभवतिअस्यव्याख्यानस्यवैशद्यार्थंछान्दो-
ग्योपनिषदुक्तजानश्रुतिराख्यायिकाऽऽकांक्षिताऽतस्तासंक्षेपेण अत्रोच्यतेजानश्रु-
तिर्नामाबहुद्रव्यप्रदोबहुन्नप्रदश्चबभूवतस्यधार्मिकाग्रेसरस्य धर्मेणप्रीतयोः कयो-
श्चिन्महात्मनोरस्यब्रह्मजिज्ञासामुत्पादयिषतोर्हंसरूपेणनिशायामस्याविदूरेग-
च्छतोरन्यतरइतरमुवाचभोभोभल्लाक्षभल्लाक्षजानश्रुतेः पौत्रायणस्यसमंदिवाज्यो-
तिराततन्तन्माप्रसाङ्क्षीस्तत्त्वामाप्रधाक्षीदितिएवं जानश्रुतिप्रशंसारूपंवाक्यमुप-
श्रुत्यापरोहंसःप्रत्युवाचकंवरेनमेतत्सन्तंसयुग्वानमिवरैक्वमात्थेतिकंसन्तमेनंजान-

श्रुतिंसयुग्वानंरैक्वंब्रह्मज्ञमिवगुणश्रेष्ठमेतदात्यमब्रह्मज्ञोरैक्वएवलोकेगुणवत्तरो, अ-
हंताधर्मेणसंयुक्तस्याप्यस्यजानश्रुतेरब्रह्मज्ञस्यकोगुणः यद्गुणजनितंतेजोरैक्वतेज-
इवमांदहेदित्यर्थः एवमुक्तेनपरेणकोऽसौरैक्वइतिपृष्टोलोकेयत्किञ्चित्साध्वनुष्ठित-
कर्मयच्चसर्वंचेतनाङ्गंविज्ञानन्तदुभयंयदीयज्ञानकर्मान्तरभूतं सरैक्वइत्याहतदेतद्धंस-
वाक्यंब्रह्मज्ञानविधुरतयाऽऽत्मनिन्दाङ्गगर्भन्तद्वत्तयाचरैक्व प्रशंसारूपंजानश्रुतिरुप-
श्रुत्यतत्क्षणादेवक्षत्तारं रैक्वान्वेषणायप्रेष्यत विदित्वाऽऽगतेस्वयमपिरैक्वमुपसद्य-
गवांषट्शतंनिष्कमश्वतरीरथञ्चरैक्वायोपहृत्यरैक्वंप्रार्थयामासअनुमएतांभगवोदेवतां
शाधियान्देवतामुपास्सेइतितदुपास्यां परां देवतांमामनुशाधीत्यर्थःइतिमत्वरैक्वः
स्वयोगमहिमविदितलोकत्रयोजानश्रुतेर्ब्रह्मज्ञानविधुरतानिमित्तानादरगर्भंहंस-
वाक्यश्रवणेनशोकाविष्टतान्तदनन्तरमेवब्रह्मजिज्ञासयोद्योगं चविदित्वाऽस्यब्रह्म-
विद्यायोग्यतामभिज्ञायचिरकालसेवांविनाऽर्थप्रदानेन शुश्रूषमाणस्यास्ययावच्छ-
क्तिप्रदानेनब्रह्मविद्याप्रतिष्ठिताभवतीतिमत्वातमनुगृह्णन्नस्य शोकाविष्टस्योपदे-
शयोग्यताख्यापिकांशूद्रशब्देनामन्त्रणेनज्ञापयन्निदमाह अपाहरत्वं शूद्रतवैवसह-
गोभिरयंरथस्तवैवसहगोभिरस्त्वितिसहगोभिरयंरथस्तवैवास्तुनैतावतामम्यंदत्तेन
ब्रह्मजिज्ञासोःशोकाविष्टस्यतवब्रह्मविद्याप्रतिष्ठिताभवतीत्यर्थः सचजानश्रुतिर्भू-
योपिस्वशक्त्यनुगुणमेवगवादिकंधनंकन्यां च प्रदायउपससादसरैक्वः पुनरपितस्य-
योग्यतामेवख्यापयन् शूद्रशब्देनामन्त्र्याह आजहारेमाः शूद्राऽनेनमुखेनालापयि-
ष्यथ इति इमानिधनानिशक्त्यनुगुणान्याजहर्थअनेनैवद्वारेणचिरसेवयाविनापि
मांत्वमभिलषितब्रह्मोपदेशरूपवाक्यमालापयिष्यसिइत्युक्त्वा तस्माउपदिदेशअ-
तःशूद्रशब्देनविद्योपदेशयोग्यताख्यापनार्थं शोकएवास्यसूचितोनचतुर्थवर्णत्व-
मितिअतोजानश्रुतेःशूद्रशब्दामन्त्रणदृष्टान्तेननशूद्रस्याधिकारसिद्धिः ॥

क्षत्रियत्वावगतेश्च ॥३५॥

क्षत्तृप्रेषणाद्बहुग्रामप्रदानाद्यैश्वर्ययोगाच्चजानश्रुतेः क्षत्रियत्वावगतिप्रतीतेर्जा-
नश्रुतिर्नशूद्रोऽतस्तल्लिङ्गाच्छूद्रस्याधिकारानुमानंनयुक्तम् ॥

उत्तरत्रचैत्ररथेनलिङ्गात् ॥ ३६ ॥

जानश्रुतेरुपदिश्यमानायामस्यामेवसम्वर्गविद्यायाम् उत्तरत्रकीर्त्यमानेना-
भिप्रतारिनाम्नाचैत्ररथेन (चित्ररथवंशोत्पन्नेन) क्षत्रियेणास्यजानश्रुतेः क्ष-
त्रियत्वमनुमीयतेकथंशौनकंचकापेयम् (कपिगोत्रंपुरोहितं) अभिप्रतारिणंचका-
क्षसेनिं (कक्षसेनापत्यं) परिविष्यमाणौब्रह्मचारीविभिक्षइत्यादिनाब्रह्मचारि-

न्नेदमुपास्महइत्यन्तेनकापेयाभिप्रतारिणोर्भिक्षमाणस्यब्रह्मचारिणश्चसम्बर्गविद्यासम्बन्धित्वं प्रतीयते तेषु चाभिप्रतारीक्षत्रियः इतरौब्राह्मणौअतोस्यांविद्यायांब्राह्मणस्यतदितरेषु च क्षत्रियस्यैवान्वयोदृश्यतेनशूद्रस्यअतोऽस्यांविद्यायामन्वितत्वाद्द्विकाद्ब्राह्मणादन्यस्य जानश्रुतेरपिक्षत्रियत्वमेवयुक्तं नशूद्रत्वंनन्वस्मिन्प्रकरणेऽभिप्रतारिणश्चैत्ररथत्वं क्षत्रियत्वञ्चनश्रुतं तत्कथमस्याभिप्रतारिणश्चैत्ररथत्वकथंवाक्षत्रियस्यंतत्राहलिङ्गादितिअथहशौनकंचकापेयमभिप्रतारिणंचकाक्षसेनिमित्यभिप्रतारिणः कापेयसम्बन्धः प्रतीयतेअन्यत्रचएतेनवैचैत्ररथङ्कापेयाअयाजयन्नितिकापेयसम्बन्धिनश्चैत्ररथत्वंश्रूयतेतथाचैत्ररथस्यक्षत्रियत्वञ्चतस्माच्चैत्ररथोनामैकक्षत्रपतिरजायतेतिअतोऽभिप्रतारिणश्चैत्ररथत्वं क्षत्रियत्वंचगम्यतेअतश्चैत्ररथेनलिङ्गाज्जानश्रुतेःक्षत्रियत्वानुमानाज्जानश्रुतेर्दृष्टान्तेनशूद्रस्याधिकारोनगम्यते ।।

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च॥ ३७ ॥

इतश्चनशूद्रस्याधिकारोयद्विद्याप्रदेशेषूपनयनादयः संस्काराःपरामृश्यन्तेतंहोपानिन्येहेभगवइत्यादितंहोपनिन्येअर्थात् तंशिष्यमाचार्यउपनीतवानित्यर्थः नारदोपिविद्यार्थीमंत्रमुच्चारयन्सनत्कुमारमुपगतमित्याहहेभगवः (भगवन्) अधीहीतिउपदिशेतिशूद्रस्य संस्काराभावोभिलप्यतेशूद्रश्चतुर्थोवर्णएकजातिर्नसंस्कारमर्हतिअतश्चनशूद्रस्याधिकारः ।।

तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ॥३८॥

छान्दोग्येजावालस्येयमाख्यायिकाश्रूयतेमृतपितृकः सत्यकामाख्योजाबालोमातरमपृच्छतकिं गोत्रोहमितितंमातोवाचभर्तृसेवाव्यग्रतयाहमपितवपितुर्गोत्रं न जानामि जाबालातुमान्नाहमस्मिसत्यकामनामात्वमसीतिएतावज्जानामिअतःसजाबालः (जाबालायाअपत्यं) गोतममागत्यतेनकिंगोत्रोसीतिपृष्टउवाचनाहंगोत्रंवद्मिनमातावेत्तिपरंतुमेमात्राकथितं उपनयनार्थमाचार्यंगत्वासत्यकामोजाबालोस्मीतिब्रूहीतिगोतमोऽनेनसत्यवचनेनतस्य शूद्रत्वाभावोनिर्धारितः अब्राह्मणएतत्सत्यंविविच्यवक्तुंनार्हतीतिनिर्धार्यजाबालमुपनेतुमनुशासितुंचप्रवृत्तेजावालस्येमांकथामनुसंधायेत्याशंक्यअज्ञातगोत्रंजावालंप्रतिगोतमस्योपनयनब्रह्मविद्योपदेशाभ्यांप्रवृत्तिः शूद्रस्याप्यधिकारंसूचयतीत्याहतदभावनिर्धारणेचप्रवृत्तेःसत्यवचनेनतस्यशूद्रत्वस्याभावनिर्धारणप्रवृत्तेःप्रवृत्तिहेतोश्चशूद्रस्याधिकारोनास्ति ।।

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ ३९ ॥

यद्युहवाएतच्छ्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम् अतएवाध्ययनप्रतिषेधोयस्यसमीपेऽपिनाध्येतव्यंभवति सकथंश्रुतिमधीयीत । अतः श्रवणार्थप्रतिषेधादपिशूद्रस्यानधिकारोऽवगम्यते । अधुनास्यानधिकारव्याख्यानस्यतत्त्वं निर्णीयतेशूद्रस्ययदनधिकारत्वमुक्तं तच्छूद्रस्यसेवाकारिकुलोत्पत्तितस्सामान्यतः कुत्सितसंगकर्मविद्याभावहेतुभ्यस्तस्मिन्नुत्कृष्टबुद्ध्यभावे तेन सूक्ष्मलक्ष्यवस्तुदुर्ज्ञेयत्वात्तस्मिन्नपात्रेऽश्रद्धावत्युपदेशानिः फलत्वविचारतोविज्ञेयम् । सद्गुणवतः श्रद्धालोर्धार्मिकस्य मेधाविनः शूद्रस्याधिकारोऽस्त्येवेत्यवधेयंगुणकर्मणामेवोत्कृष्टिनिकृष्टयोर्मुख्यहेतुत्वमिति युक्तिस्मृतिश्रुतिप्रमाणसिद्धसिद्धान्तइतिनिश्चयः अतो गुणकर्मानुसारेणैव वर्णानां श्रेष्ठत्वंजघन्यत्वञ्च विज्ञेयमस्तिनकुलोत्पत्तिमात्रमुत्तमत्वानुत्तमत्वयोर्मुख्यंकारणं भवितुमर्हति ब्राह्मणकुलोत्पन्नोयवनेन सहभोजनाद्वान्यनिषिद्धपापाचरणात्पतित इत्युक्तोदण्डप्राप्तः कुलात्स्ववर्गात्त्यक्तोवेति लोकेदृश्यते । यदिकुलोत्पत्तिरुत्तरस्यमुख्यत्वं स्यात् तर्ह्युत्तमनिकृष्टगुणप्राप्तावपि शरीरस्थितिमत्त्वांयत्कुलोत्पन्नस्तस्यैववर्णत्वं धर्मत्वं पदत्वञ्च स्वीकार्यं न कस्माच्चिद्दुर्गुणात्श्वपचयवनादिसहभोजनाद्वातस्यपातित्यं सम्भवति नचैवंलोके व्यवहारो दृश्यते किन्तूत्तमकुलोत्पन्नोऽधर्मचर्य्यया निकृष्टोदण्ड्यस्त्याज्योभवति अतोलोकेऽपि गुणकर्मणामेवमुख्यत्वमनुभूयते यथाश्रेष्ठवर्णोऽधर्मचर्य्ययानिकृष्टोभवतीत्येवमन्तव्यः सतांधार्मिकाणामाप्तानां पक्षपातरहितानां न्यायतोऽयमेव सिद्धान्तोभवितुमर्हति एवं युक्त्यानिश्चीयते ब्रह्मसूत्रनिर्मातुर्महर्षेरप्ययमेवसिद्धान्तोऽत्रयाथ्यं कथं तदभावनिर्धारणेचप्रवृत्तेरत्रसूत्रेसत्यकथनमात्राद्गौतमोनहर्षिरज्ञातगोत्रस्य जावालस्य शूद्रत्वानिर्धारणानन्तरं तमुपनेतुमुपदेष्टुञ्च प्रववृते इति विज्ञापनात्यत्सत्यकथनंनवर्णत्वं गोत्रत्वं वाऽस्तिउत्तमगुणत्वं धर्मत्वमेवतस्यैव शूद्रत्वाभावनिर्धारणहेतुत्वं महर्षिणा स्वीकृतम् अतोयस्यवर्णतो गुणकर्मतोऽपि शूद्रत्वंतस्याधिकारो नास्ति यस्यतुसत्यत्वादिधर्मगुणश्रद्धालुत्वसत्कर्मभिर्जावालवच्छूद्रत्वाभावो निर्धारितः तस्याधिकारोऽस्त्येवयुक्तितोहेतुतश्शब्दतोवानकिमपिप्रमाणं तस्याधिकारनिषेधस्य निश्चीयते । ननु कासुचित्स्मृतिष्वीदृशानिनिषेधवाक्यान्युपलभ्यन्ते "अथास्यवेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूर्णमिति यद्युहवाएतच्छ्मशानं यच्छूद्रं तस्माच्छूद्रसमीपेनाध्येतव्यमितिभवतिचोच्चारणेजिह्वाच्छेदो धारणेशरीरभेदइति" अतश्शूद्रस्यानधिकारत्वमवगम्यतेइतिचेन्नैवं नेदृशानिवाक्यान्ययुक्तानिकस्याप्याप्तस्यभवितुमर्हन्त्यतः कैश्चित्पक्षपातग्रस्तहृदयैःस्वार्थसाधकैः प्रक्षिप्तान्येवज्ञातव्यानियतोवेदश्रवणंनि-

षिद्धकर्ममहापापंवायेनश्रोतुर्जिह्वाछेदनादिदण्डविधानमुचितंस्यात्यदिपरमेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनज्ञानकर्मविषयकवेदवाक्येष्वेकत्रानेकशब्दश्रवणे पठनेदण्डविधानमस्ति तर्हिपृथक्त्वेनेश्वरब्रह्मपरमात्मसवित्रादिवेदोक्तशब्दवक्तारः श्रोतारोऽपिशूद्राः दण्डयाः मन्तव्याः तथाचशूद्रस्येश्वरनामस्तुतिकथनेस्मरणेऽप्यनधिकारः सेत्स्यतिनेश्वरस्येदृशोपक्षपातेच्छयाहेतुः शूद्रेचिन्तनीयोऽस्तिअन्यच्च "आवर्यंश्चतुरोवर्णान् कृत्वाब्राह्मणमग्रतः" ईदृशवाक्येतिहासपुराणेषुविधिरपिस्मर्य्यंते तुल्यप्रमाणबलत्वादनेन निषेधवाक्यप्रतिषेधेइदंवाक्यंस्वीकार्य्यंकिंवापरस्परविरोधादुभयोस्त्यागे अन्यत्प्रमाणं मृग्यंद्वयोः प्रमाणानुसंधानेविधिवाक्यस्ययुक्त्याप्तवाक्यस्मृतिश्रुतिप्रमाणसाहाय्येन सबलत्वान्निषेधवाक्यमेवाप्रमाणंत्याज्यञ्च । तद्दुर्बलत्वात् आधुनिकभाष्यटीकाकारैर्यत्सर्वथाऽनधिकारत्वं वर्णितयैश्चस्मृतीतिहासपुराणेषुनिषेधवद्विधिरप्युपलभ्यते अतोवेदपूर्वकस्तुनास्त्यधिकारइति स्थितएवमुक्तं तदसत्यमार्षसिद्धान्तवेदविरुद्धमेवप्रतीयतेयतोनिषिद्धकर्मतोब्राह्मणोऽपिशूद्रत्वमनधिकारत्वंच प्राप्नोति शूद्रो धर्मचर्य्ययाब्राह्मणत्वमधिकारत्वञ्च यद्यपि लोकेईदृशव्यवहारोनभवेत् तथापि न्यायतआप्तवाक्याच्चायमेवसिद्धान्तो निश्चीयतेअत्रप्रमाणमित्याहशुक्राचार्यःशुक्रनीतिनामकेस्वग्रन्थे"नजात्याब्राह्मणश्चात्रक्षत्रियोवैश्यएवच नशूद्रोनचम्लेच्छोवाभेदितागुणकर्मभिः" अ० १ श्लो० ३८— " ब्रह्मणस्तुसमुत्पन्नाः सर्वेतेकिन्नुब्राह्मणाः नवर्णतोजनकाद्वाब्राह्म्यंतेजःप्रपद्यते ३९ " तथाहमहर्ष्यापस्तम्बः "धर्मचर्य्ययाजघन्योवर्णः पूर्वपूर्वंवर्णमापद्यतेजातिपरिवृत्तौ अधर्मचर्य्ययापूर्वःपूर्वोवर्णोजघन्यंजघन्यंवर्णमापद्यतेजातिपरिवृत्तौ। सर्वेषांवर्णानां विद्यारूपवेदाधिकारविषयेसाक्षात्यजुर्वेदेषड्विंशतितमाध्याये द्वितीयमन्त्रप्रमाणमस्तिअस्माद्धेतोः सूत्रकारमहात्मनोपसंहारे श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधात्स्मृतेश्च यद्यप्यत्रसूत्रेस्मृतिमात्रस्यैवनामोक्तंचकारः पूर्वोक्तादन्यहेतुप्रदर्शनार्थःतदभावनिर्धारणेचप्रवृत्तेः इति सूत्रोक्तवदवधेयम् वेदप्रमाणेसतितद्विरुद्धस्मृतिवाक्यस्याप्रामाण्यमेवतदुक्तमन्त्रोयम् यथेमांवाचंकल्याणीमावदानि जनेभ्यो ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्रायचार्य्याय च स्वायचारणायच अ० २६ मन्त्रः २ अस्यव्याख्यानंयथाइमांप्रत्यक्षभूतांवेदचतुष्टयीं कल्याणीं कल्याणसाधिकांवाचं धारणीं जनेभ्यः सर्वेभ्योमनुष्येभ्यः आवदानि अहमावदानिकेभ्योजनेभ्य इत्यपेक्षयाहब्रह्मराजन्याभ्यां ब्राह्मणक्षत्रियाभ्याम्अर्य्यायवैश्याय च शूद्रायस्वाय स्वपुत्रायसेवकायसम्बन्धिनेवाचारणायअतिशूद्राय । यथातथयोर्नित्यसम्बन्धोऽतस्तथाशब्दोऽध्याहारेणग्राह्यः तथाहेविद्वांसः यूयंसर्वेभ्यः इमांवाणीमुपदिशत

अर्थात् सर्वेषांहिताय पक्षपातरहितस्य ममेयंवाणीविद्यतेसायुष्माभिः सर्वेभ्यो जनेभ्योवक्तव्या अर्थात्श्रावणीयापाठनीयेत्यर्थः केचिद्वदन्तिजनशब्देनब्राह्मणएव वा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याएवग्राह्याः तेषामेवाधिकारत्वात्नैतद्युक्तं यतोजनेभ्यः इतिशब्दात्परेभागेमन्त्रेपृथक्पृथक् नामान्युक्तानिसन्ति यदिपरमेश्वरोब्राह्मणेभ्यो वा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यमात्रेभ्योऽधिकारमदास्यत् तेषामेवाधिकारोऽभविष्यत्त र्हिशूद्रादीनां पृथक्त्वेन प्रत्येकस्यनाममनाऽवदिष्यत् अतोविधिरेवावधार्य्योवेद प्रमाणानुकूलतयाऽन्यत्रोक्तविधिवाक्यानामपिसबलत्वमवगम्यते न्यायतश्चाप्तो-क्तप्रमाणतः श्रुतितश्चविधिसिद्धेर्नसर्वथानिषेधस्यप्रामाण्यं स्मृतिवाक्यस्यचरिता-र्थत्वायनिषेधोऽभ्युक्तप्रकारेणमन्तव्यो इत्तीतिस्थितंसमाप्तश्चेदमधिकारनिरूपणम् ॥

इतिश्रीमत्प्रभुदयालुनिर्मिते समीक्षाकरे चतुर्थोऽध्यायः । ४ ।

एषां भाषानुवादः ॥

अथ वेदान्त के विशेष सूत्रों का जो प्रायः आधुनिक भाष्य वा टीका-कारों से अयुक्त व्याख्यान किया गया है उस की और व्याख्यान में उक्त श्रुति के व्याख्यान की समीक्षा प्रारम्भ की जाती है वेदान्त दर्शन के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में यह सूत्र है ॥

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥

अर्थ—अन्तर में उस के धर्म के उपदेश से ॥ २१ ॥

शांकरभाष्य में श्रीशङ्कराचार्य जी ने इस सूत्र का व्याख्यान इस प्रकार से किया है छान्दोग्य में ऐसावर्णन है ॥

यएषोऽन्तरादित्येहिरण्मयः पुरुषःदृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिर-ण्यकेशआप्रणखात् सर्वएवसुवर्णः तस्ययथाकप्यासं पुण्डरीकमे-वमक्षिणी तस्योदितिनामसएषसर्वेभ्यः पाप्मभ्यउदिति उदिति हवैसर्वेभ्यःपाप्मभ्यःयएवं वेद ॥

अर्थ—जो यह सूर्य के मध्य में प्रकाशमय पुरुष देखाजाता है जिस की प्रकाशमय डाढ़ी है प्रकाश ही जिस के केश हैं नख पर्यन्त सब प्रकाश ही रूप है कप्यास कमल के समान अर्थात् वृक्ष में लगा हुआ फूले कमल के स-मान जिसके नेत्र हैं उस का उदिति नाम है वह सब पापों से रहित है जो उस को ऐसा जानता है वह सब पापों से छूट जाता है । इस में यह संशय

है कि विद्या वा कर्म के अतिशय से उत्कृष्टता को प्राप्त कोई संसारी जीव है जो सूर्यमण्डल व नेत्र में उपास्य होना सुना जाता है अथवा नित्य सिद्ध परमेश्वर है। पहले ऐसा ज्ञात होता है कि संसारी है किस हेतु से रूपवान् होना सुनने से अर्थात् जो यह सूर्य में प्रकाशमय है इत्यादि श्रुतिवाक्य से परमेश्वर को रूपवान् होना युक्त नहीं है क्योंकि श्रुति में शब्दरहित स्पर्श रहित रूपरहित नाशरहित कहा है आधाररहित सब के आधाररूप का जो यह सूर्य में देखा जाता है ऐसा आधार सुनने से भी युक्त नहीं है ऐसा पूर्व पक्ष स्थापन करके यह उत्तर वर्णन किया है कि परमेश्वर ही सूर्य में व नेत्र में उपास्य है संसारी नहीं है जिस प्रमाण से उस के धर्म के उपदेश से अर्थात् उस के परमेश्वर के धर्म का उपदेश है इस से जैसा यह कहा है कि उस का उदिति नाम है ऐसा सुना कर यह कहा है इस आदित्य पुरुष का नाम है वह यह सब पापों से रहित है ऐसा सब पापों से रहित होने अर्थ से उदिति नाम का निर्वचन श्रुति वर्णन करती है, सब पापों का न होना परमात्मा ही में सुना जाता है ॥ यथा—

य आत्मा अपहतपाप्मा ॥

अर्थ—जो आत्मा पापरहित है इत्यादि, इत्यादि हेतुओं से परमात्मा ही उपास्य है। यह सिद्धान्त है "जो यह सूर्य में" इत्यादि इस श्रुतिवाक्य का शब्दार्थ व विशेष व्याख्यान यह है कि सूर्य्य में व नेत्र में हिरण्मय अर्थात् प्रकाशमय प्रकाशमयश्मश्रु (डाढ़ी) प्रकाशमय केश जिसके हैं नखपर्यन्त सब प्रकाश ही रूप है ऐसा जो यह पुरुष देखा जाता है उस के जैसे कप्यास पुण्डरीक ऐसे नेत्र हैं। कप्यास शब्द के कपि व आस दो अवयव हैं क शब्द का अर्थ जल है व पीङ् धातु पीना अर्थ वाचक है इससे जल को जो पीवै वह कपीवाच्य होता है नपुंसक लिङ्ग में ह्रस्व होने से कपि होता है जल पीता हुआ स्थित ऐसा अर्थ कप्यास शब्द का होता है अर्थात् अपने मूल व नाल से जो जल को पीता है अर्थात् मूल व नाल से जल को खींच कर आर्द्रता वा प्रफुल्लता को प्राप्त है व स्थित है वह कप्यास है ऐसा जो कमल उस के समान नेत्र हैं अर्थात् अपने नाल से भिन्न मुरझाया शोभा की न्यूनता को प्राप्त नहीं किन्तु नाल में स्थित पूर्ण शोभा को प्राप्त जो कमल है वैसे उस के नेत्र हैं अथवा क जल वाचक शब्द और अपि उपसर्ग पूर्वक आस

धातु है—वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः इस वचन से अपि के अकार का लोप हो गया इस प्रकार से भी जल में स्थित यह अर्थ होता है अथवा सूर्य अपने किरणों से जल को खींचता है इस से कपि शब्द का अर्थ सूर्य है आस का अर्थ मण्डल है अर्थात् कप्यास का अर्थ सूर्य्यमण्डल वा हृदयपुण्डरीक परमात्मा के उपासना के स्थान हैं वैसे ही उस उपासक के नेत्र हैं उस पुरुष का उदिति नाम है अर्थात् उत् यह नाम है उत् इति का उदिति होजाता है अब उत् नाम का निर्वचन श्रुति वर्णन करती है कि, सो यह सब पापों से उद्गत है अर्थात् सब पापों के मेल से रहित है शांकरभाष्य के टीका में श्रीगोविन्दानन्द ने—

तस्य यथाकप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी ॥

इति । श्रुतिवाक्य के अवयव का ऐसा अर्थ वर्णन किया है कि कपि अर्थात् मर्कट का आस जो पुच्छ का भाग अतितेजवान् है उस के समान रंग का जो पुण्डरीक है ऐसे उस पुरुष के नेत्र हैं अर्थात् हाल का फलाहुआ लाल कमल के समान नेत्र हैं यह अर्थ ग्रहण के योग्य नहीं है क्योंकि इसमें बानर की बैठने की जगह के समान लाल कमल की उपमा देने में बीभत्स अर्थ की प्राप्ति है और श्रुतिवक्ता का अन्य कोई उत्तम उपमा न कह सकने का दोष विदित होता है और कपि के मुख व आस का लाल रंग से भिन्न रंग होना भी संभव है पुण्डरीक सित कमल (शुक्ल रंग का कमल) का नाम है अरुण कमल का पुण्डरीक नाम भी नहीं है इस से उत्तम न होने वा असंगत होने से स्वीकार करने योग्य नहीं है ॥

अनुकृतेस्तस्य च अ० १ पा० ३ सू० २२

उस की अनुकृति से भी अ० १ पा० ३ सू० २२

वेदान्तदर्शन में प्रथम अध्याय में तीसरे पाद में दहर अधिकरण में अर्थात् हृदयपुण्डरीक स्थान में दहर शब्द वाच्य की उपासना वर्णन में "दहर उत्तरेभ्यः" यहां से आरम्भ करके "अनुकृतेस्तस्य च" इस सूत्र पर्य्यन्त विचार करके हेतुओं से दहराकाश शब्द से परब्रह्म ही उपास्य है यह निश्चय किया है— "दहर उत्तरेभ्यः" इस का अर्थ यह है कि दहर अर्थात् दहराकाश परब्रह्म है किस हेतु से उत्तरों से अर्थात् उत्तरवाक्य में प्राप्त हेतुओं से । तात्पर्य यह है कि उत्तरवाक्य में यह वर्णन है कि यह आत्मा पापरहित जरारहित मृत्यु

रहित शोकरहित क्षुधारहित पिपासारहित सत्यकाम सत्यसंकल्प है इस प्रकार से निरुपाध्यात्मक होना पापरहित होना आदिक और सत्यकाम होना सत्यसंकल्प होना आदि गुण जो दहर आकाश में वर्णन किये गये हैं उन से यह ज्ञात होता है कि दहराकाश परब्रह्म है इत्यादि निरूपण करने के पश्चात् अन्त में "अनुकृतेस्तस्य च २२ अपि स्मर्यते" २३ यह दो सूत्र हैं उन में "अनुकृतेस्तस्य च" इस सूत्र का यह अर्थ है उस की अर्थात् दहराकाश शब्द से वाच्य परब्रह्म की अनुकृति से अर्थात् परब्रह्म के अनुकार से (समान गुण रूप होने से) यह पापरहित होना आदि युक्त बंधरहित जीवात्मा है—दहराकाश नहीं है क्योंकि मुक्त हुवे जीवात्मा का ब्रह्म के अनुकार होना सुना जाता है जैसा कि इस श्रुति में वर्णन है ॥

यदा पश्यः पश्यति रुक्मवर्णम् । इत्यादि

अर्थ—जब देखने वाला ज्ञानी प्रकाश रूप कर्त्ता सब के कारण रूप सर्व समर्थ ब्रह्म पुरुष को देखता व जानता है तब वह विद्वान् मायारहित पाप पुण्य को नाश कर परब्रह्म की समता को प्राप्त होता इस से प्रजापति वाक्य में कहा गया जीव अनुकर्ता है अर्थात् समता का धारण करने वाला वा समरूप होने वाला है और ब्रह्म दहराकाश शब्द से वाच्य अनुकार्य है अर्थात् जिस की अनुकृति प्राप्त होने योग्य है वह है। कोई अनुकृति अनुमान है ऐसा कह कर "अनुकृतेस्तस्य च, अपि स्मर्यते" इन दो सूत्रों का भिन्न अधिकरण मानते हैं और ऐसा वर्णन करते हैं कि उसी प्रकाश करते हुये के पीछे वा समान सब प्रकाशित होता है इस प्रकार वर्णन करने वाली जो यह श्रुति है यह परब्रह्म होना निर्णय करने के लिये है परन्तु "अदृश्यत्वादि गुणको धर्मोक्तेः, द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्" इन दो अधिकरणों से पूर्व ही प्रकरण का परब्रह्म विषयक होना प्रतिपादन किया है और "ज्योतिश्चरणाभिधानात्" इत्यादि में परब्रह्म का प्रकाश रूप होना पूर्व ही होने से फिर पूर्वपक्ष का उठाना वा स्थापन करना नहीं होसक्ता इस से युक्त नहीं है और सूत्र के अक्षरों से भी विरुद्ध वा मेलरहित है इस से अयुक्त है। अनुकृति अनुमान ही है यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि करोति (कर्ता है) भाति (प्रकाशित होता है) इन दोनों का एक अर्थ नहीं हो सक्ता २२, इसी पाद में ब्रह्मविद्या का अधिकार निरूपण विषयक निम्न लिखित सूत्र हैं ॥

शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात्सूच्यते हि ॥

(उनके वा उसके अनादरवाक्य सुने से तब जाने से) (रैक्व प्रति जानेसे) वा उस को (शोक को) प्राप्त होने से इसका (जानश्रुति का) जिस से कि शोक सूचित किया जाता है ३४ इस का व्याख्यान यह है देवता आदि को भी ब्रह्मविद्या में अधिकार होने को निरूपण करके शूद्र का भी उस में अधिकार है वा नहीं यह विचार किया जाता है क्या युक्त है यह विचारने में अर्थी होने व सामर्थ्य होने में अधिकार के होने का विधान विदित होता है शूद्र का भी अर्थित्व वा सामर्थ्य संभव होने से अधिकार है यह सिद्ध होता है। इतिहास वा पुराणों में विदुर आदि तपोनिष्ठ हुये हैं और छान्दोग्य उपनिषद् में भी सम्बर्गविद्या में शूद्र का ब्रह्मविद्या में अधिकार है ऐसा प्रतीत होता है ब्रह्मविद्या के सुनने वा जानने की इच्छा करने वाले जानश्रुति को रैक्व आचार्य हे शूद्र ऐसा सम्बोधन किया है ब्रह्मविद्या उपदेश करने में इन गौओं को तू ने दिया इसी द्वारा हे शूद्र तू हम से ब्रह्मउपदेश कहलावेगा इत्यादि कथन है इस से शूद्र का भी अधिकार होना विदित होता है इस के उत्तर में यह सूत्रवाक्य है आशय यह है कि सम्बर्ग विद्या में रैक्व का जानश्रुति को हे शूद्र यह कहना जानश्रुति के शूद्र वर्ण सिद्ध होने का हेतु निश्चय करने योग्य नहीं है क्यों नहीं है वह हेतु सूत्र में वर्णन किया है सूत्र का अर्थ यह है कि उन के (हंसों के) वा हंसों से अनादर सुनने से इस को (जानश्रुति को) शोक उत्पन्न हुवा उसको जान कर रैक्व ने जानश्रुति से हे शूद्र ऐसा कहा है शूद्र शब्द से शोक प्राप्त यह रैक्व ने सूचित किया है अर्थात् अपने परोक्षज्ञान को जनाया है इस से रैक्व से कहे हुये शूद्र शब्द से इस का (जानश्रुति का) शोक सूचित किया जाता है कैसे शूद्र शब्द से शोक हुआ यह सूचित किया जाता है "तदाद्रवणात्" यह कहने से तदाद्रवणात् शब्द का अर्थ उस को प्राप्त होने से वा उस से आने से वा प्राप्त होने से यह होता है अर्थात् शोक को प्राप्त होने से अथवा शोक से (शोक होने से) रैक्व के पास आने वा प्राप्त होने से अर्थात् जानश्रुति में हंसों के वचन सुनने से शोक को प्राप्त हुआ वा शोक होने से रैक्व के पास आया शूद्र शब्द का अर्थ शोक को वा शोक से प्राप्त हुआ संभव होने से ऐसा आशय अनुमान से ज्ञात होता है। शुचेर्दश्च। इस सूत्र से रप्रत्यय होने व शुचधातु के दीर्घ होने व चकार का दकार हो जाने से शूद्र होता है अब यह व्याख्यान स्पष्ट समझ में आने के लिये छान्दोग्य उपनिषद् में जो जानश्रुति की कथा है उस को यहां संक्षेप से वर्णन करते हैं। जानश्रुति नामक

कोई बहुत द्रव्य व अन्न का देने वाला हुआ उस धर्मवानों में अग्रगामी जानश्रुति के धर्म से प्रसन्न हुये कोई महात्मा जानश्रुति के चित्त में ब्रह्म की जिज्ञासा उत्पन्न करने की इच्छा से रात्रि के समय में हंस रूप धारण कर के उस के समीप प्राप्त होकर एक हंस ने दूसरे से कहा कि हे भल्लाक्ष (हंस) जिस जानश्रुति का तेज सूर्य्य की ज्योति के समान दीप्तिमान् फैल रहा है उस के पास न जाना व उसको न छूना ऐसा न हो वह तेज तुझे भस्म कर देवे। ऐसी जानश्रुति की प्रशंसा सुन कर दूसरे हंस ने कहा कि क्या तू इस नीच को सयुग्वान् (गाड़ी में स्थित व गाड़ी साथ रखने वाले) रैक्व ब्रह्मज्ञानी के समान श्रेष्ठगुण वर्णन करता है एक ब्रह्मज्ञानी रैक्व ही लोक में श्रेष्ठ गुणवान् प्रशंसा के योग्य है महाधर्मसंयुक्त होने पर भी ब्रह्मज्ञानरहित इस जानश्रुति का कौन ऐसा गुण है जिस से उत्पन्न हुआ तेज रैक्व के तेज के समान मुझे भस्म करेगा ऐसा कहने पर पहले हंस ने पूछा। वह रैक्व कौन है। इस के उत्तर में दूसरे हंस ने कहा कि लोक में जो साधुओं से अनुष्ठान किया गया कर्म है और सम्पूर्ण जो आत्मसम्बन्धी ज्ञान है यह दोनों जिस के ज्ञान व कर्म के अन्तर्गत हैं अर्थात् ऐसा कोई उत्तम कर्म व साधन नहीं है जो उस ने न किया हो और आत्मज्ञान व ब्रह्मज्ञान विषय में कोई विषय नहीं है जिसको वह न जानता हो वह रैक्व है ब्रह्मज्ञानरहित होने से अपनी निन्दायुक्त व रैक्व के प्रशंसा रूप ऐसा हंस का वाक्य जानश्रुति सुन कर उसी समय दूत को रैक्व के अन्वेषण (खोज) के लिये भेज कर व पता लगा कर उस के आने पर आप भी रैक्व के समीप प्राप्त होकर छः सौ गौ मौहरें घोड़ा रथ रैक्व को उपहार (नज़र) देकर यह प्रार्थना किया कि हे भगवन् जिस देवता की आप उपासना करते हैं मुझे भी उस का उपदेश कीजिये रैक्व ने अपने ज्ञान से यह जान कर कि हंस के अनादर वाक्य सुन कर शोक को प्राप्त होकर ब्रह्मविद्या का उद्योग किया है ब्रह्मविद्या के योग्य है विना बहुत काल की सेवा करने के इस जिज्ञासु के यथाशक्ति दान करने से। ब्रह्मविद्या की प्रतिष्ठा होगी यह समझ कर जानश्रुति पर अनुग्रह कर के उस के शोक होने व उपदेश के योग्य होने के वृत्तान्त को, हे शूद्र ऐसे शूद्र शब्द के सम्बोधन से जनाते हुये यह कहा कि यह गौओं सहित रथ आदि ले जा, तू अपने ही पास रख। इतना हमको देने से ब्रह्मविद्या की प्रतिष्ठा नहीं होती है आशय यह है कि बहुत काल तक ब्रह्मविद्या के लिये सेवा करे अथवा जितनी शक्ति हो उतना दान

देवै तब ब्रह्मविद्या की प्रतिष्ठा होती है इस से रैक्वनें उक्त दान को न ले कर अधिक दान का मनोरथ किया है राग वश होकर नहीं किया। जानश्रुति फिर अपनी शक्ति के अनुसार गौ आदि धन व कन्या को दिया और प्रार्थना किया फिर रैक्व उसके शोक प्राप्त होने व योग्यता ही कहने के अभिप्राय से शूद्र शब्द से सम्बोधन करके ऐसा कहा कि हे शूद्र तूने यह दान मुझे दिया इसके द्वारा विना बहुत काल की सेवा तू मुझसे ब्रह्म के उपदेश के वाक्यों को कहलावैगा। ऐसा कहकर उसको ब्रह्म का उपदेश किया इससे शूद्र शब्द से जानश्रुति के शोक ही को सूचित किया है शूद्र वर्ण होने को नहीं कहा। इस से जानश्रुति को शूद्र कहने के दृष्टान्त से शूद्र का अधिकार होना सिद्ध नहीं होता ॥

क्षत्रियत्वावगतेश्च ॥ ३५ ॥

क्षत्रिय होने की सिद्धि होने से भी ॥ ३५ ॥

दूत भेजने बहुत ग्रामों के दान देने आदि के ऐश्वर्य योग से जानश्रुति के क्षत्रिय होने की प्रतीति होती है जानश्रुति शूद्र नहीं है इससे जानश्रुति के लक्षण से शूद्र के अधिकार का अनुमान करना युक्त नहीं है ॥

उत्तरत्रचैत्ररथेनलिङ्गात् ॥३६॥

उत्तर में (उत्तर भाग में) चैत्ररथ के साथ कथन होने के लक्षण से,

जिसमें जानश्रुति का उपदेश है इसी सम्बर्ग विद्या में उत्तर भाग में अभिप्रतारि नामक चैत्ररथ क्षत्रिय के साथ अर्थात् चित्ररथ के वंश में उत्पन्न अभिप्रतारि क्षत्रिय के साथ जानश्रुति का वर्णन होने से जानश्रुति का क्षत्रिय होना अनुमान किया जाता है कैसे अनुमान किया जाता है ऐसा वर्णन न होने से कि कापेय (कपिगोत्रवाले) शौनक (शुनक के पुत्र) और काक्षसेनि (कक्षसेन के पुत्र) अभिप्रतारि दोनों के लिये सूपकारने भोजन परसा उनके भोजन करने के समय में उन से एक ब्रह्मचारी ने भिक्षा मांगी इत्यादि वर्णन से हे ब्रह्मचारिन् हम इसकी उपासना नहीं करते यह कहने तक कापेय अभिप्रतारि व भिक्षा मांगने वाले ब्रह्मचारी का तीन का सम्बर्ग विद्या में सम्बन्धी होना प्रतीत होता है उन में से अभिप्रतारि तौ क्षत्रिय और अन्य दो ब्राह्मण थे अर्थात् कापेय पुरोहित व ब्रह्मचारी यह दोनों ब्राह्मण थे इससे इस विद्या में ब्राह्मण का उस से भिन्न वर्णों में से क्षत्रिय

ही के साथ सम्बन्ध होना देखा जाता है शूद्र का योग होना विदित नहीं होता। इस से इस विद्या में अन्वित (योग को प्राप्त) होने से रैक्व ब्राह्मणसे भिन्न जानश्रुति का भी क्षत्रिय होना ही मानना युक्त है शूद्रत्व मानना युक्त नहीं है। अब यह शङ्का है कि इस प्रकरण में अभिप्रतारि का चैत्ररथ होना व क्षत्रिय होना श्रुत नहीं है अर्थात् सुना नहीं गया वा ज्ञात नहीं होता। कैसे अभिप्रतारि का क्षत्रिय होना व चैत्ररथ होना सिद्ध होता है यह विज्ञापन के लिये यह कहा है "लिङ्गात्" अर्थात् लिङ्ग से (अनुमान से) अर्थात् शौनक कापेय अभिप्रतारि काक्षसेनि इत्यादि कहने से अभिप्रतारि का कापेय के साथ सम्बन्ध होना प्रतीत होता है और अन्यत्र भी कहा है कि इस से चैत्ररथ को कापेयों ने यजन (पूजन वा यज्ञ) कराया इस प्रकार से कापेय के सम्बन्धी का चैत्ररथ होना सुना जाता है ऐसे ही चैत्ररथ का क्षत्रिय होना चैत्ररथ नामक एक क्षत्रियपति हुआ इस वाक्य से ज्ञात होता है इस से अभिप्रतारि का चैत्ररथ होना व क्षत्रिय होना सिद्ध होता है। इससे चैत्ररथ के लिङ्ग से जानश्रुति का क्षत्रिय होना अनुमान करने से जानश्रुति के दृष्टान्त से शूद्र का अधिकार होना सिद्ध नहीं होता॥

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥३७॥

संस्कार के परामर्श से और उसका अभाव कहने से॥ ३७॥

इस से भी शूद्र का अधिकार नहीं है कि विद्या प्रदेशों में उपनयन आदि संस्कार विचार किये जाते हैं "यथा तंहोपनिन्ये अधीहि भगव" इत्यादि अर्थ–उस शिष्य को आचार्यने उपनयन किया नारद भी विद्यार्थी हो मंत्र को उच्चारण करते हुवे सनत्कुमार के पास आकर यह कहा कि हे भगव अर्थात् भगवन् अधीहि अर्थात् उपदेश कीजिये तब आचार्य ने विद्यार्थी शिष्य को उपदेश किया इत्यादि, शूद्र के संस्कार का अभाव है शूद्र के संस्कार का विधान नहीं है क्योंकि ऐसा कहा है कि शूद्र चौथा वर्ण एक जाति है संस्कार के योग्य नहीं है इस से शूद्र का अधिकार नहीं है॥

तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ॥ ३८ ॥

और उसके अभाव निर्धारण में प्रवृत्ति होने से॥ ३८॥

छान्दोग्य में जाबाल की यह आख्यायिका (कथा) है कि जाबाल का पिता मरगया था ऐसे पितारहित जाबाल ने अपने माता से पूंछा कि मेरा गोत्र

क्या है माता ने कहा कि मैं अपने पति की सेवा में व्यग्रचित्त रहने से मैं भी तेरे पिता के गोत्र को नहीं जानती हूं मैं इतना ही जानती हूं कि मेरा नाम जावाला है और तेरा नाम सत्यकाम है इसके पश्चात् जावाल (जाबाला का पुत्र) गौतम ऋषि के पास उपनयन के लिये आया गौतम ने पूछा तेरा गोत्र क्या है जावाल ने सत्य कह दिया कि गोत्र को न मैं जानता हूं न मेरी माता जानती है परन्तु मेरी माता ने यह कहा है कि आचार्य के पास उपनयन के लिये जा और यह कह कि मैं सत्यकाम जावाल हूं गौतम ने उस के इस सत्य वचन से उसके शूद्रत्व के अभाव को निर्धारित किया अर्थात् शूद्रता नहीं है ऐसा मान लिया अर्थात् विना ब्राह्मण के ऐसा सत्य विचार कर कोई नहीं कर सकता इस विचार से शूद्रत्व को न मानकर ब्राह्मणत्व का निश्चय करिके जावाल के उपनयन करने व उपदेश करने में प्रवृत्त हुये । जावाल की इस कथा को चित्त में लाकर यह शङ्का करिके कि न जाने हुये गोत्र जावाल को गौतम जी का उपनयन करना व उस को ब्रह्मविद्या का उपदेश करना शूद्र का भी अधिकार होना सूचित करता है यह कहा है उसका अभाव निर्धारण में प्रवृत्ति होने से अर्थात् सत्य वचन से उसका शूद्रत्व का अभाव निर्धारण करने पर प्रवृत्ति होने से शूद्रत्व होने में उपनयन व उपदेश नहीं किया इस से शूद्र का अधिकार नहीं है ॥

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ ३९ ॥

और सुनने पढ़ने अर्थ के प्रतिषेध से स्मृति से ॥ ३९ ॥

स्मृति में ऐसा वर्णन है कि शूद्र जो है वह पशु या श्मशान के समान है तिस से शूद्र के समीप वेद न पढ़ना चाहिये इसी से शूद्र के पढ़ने का निषेध सिद्ध है क्योंकि जिस के समीप पढ़ने योग्य नहीं होता वह वेद को स्वयं कैसे पढ़ेगा इस से श्रवण व पठन अर्थ के प्रतिषेध से भी शूद्र का अधिकार न होना सिद्ध होता है । अब इस अधिकार न होने के व्याख्यान का तत्त्व निर्णय किया जाता है शूद्र के अधिकार न होने को जो वर्णन किया है वह शूद्र के सेवा कर्म करने वालों के कुल में उत्पन्न होने व कुल सङ्ग व कर्म योग व विद्या के अभाव से प्रायः उस में उत्कृष्ट बुद्धि न होने से सूक्ष्म लक्ष्य वस्तु उस को दुर्ज्ञेय होने और उस में उस को श्रद्धा न होने से अश्रद्धालु अपात्र में उपदेश का निःफल होना विचारने से जानना चाहिये कि उत्तम गुण वाले

श्रद्धालु धार्मिक विचारवान् बुद्धिमान् शूद्र को भी अर्थात् शूद्रकुल में उत्पन्न का भी अधिकार ही है यह निश्चय करना चाहिये गुण व कर्म ही मुख्य व उत्कृष्टता व निकृष्टता के हेतु हैं यदा युक्ति स्मृति श्रुति प्रमाण से सिद्ध सिद्धान्त है यह निश्चय है इस से गुण कर्म अनुसार ही वर्णों की उत्कृष्टता व निकृष्टता जानने योग्य है कुल की उत्पत्तिमात्र उत्तमता व अनुत्तमता की मुख्य कारण नहीं हो सकती जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न है वह यवन के साथ भोजन करने व अन्य निषिद्ध पाप आचरण से यह पतित होगया यह कहा जाता है दण्ड को प्राप्त होता है कुल से सम्बर्ग से त्याग दिया जाता है ऐसा लोक में देखा जाता है जो कुल में उत्पत्ति होने की मुख्यता होती तो उत्तम निकृष्ट कर्म प्राप्त होने में भी शरीर की स्थिति होने में जिस कुल में उत्पन्न है उसी कुल का वर्ण धर्म व पदवी होना मानने योग्य है किसी दुर्गुण से श्वपच यवन आदि के साथ भोजन करने से उस का पतित होना सम्भव नहीं है परन्तु लोक में ऐसा व्यवहार देखने में नहीं आता किन्तु उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ अधर्म करने से निकृष्ट दण्ड के योग्य व त्याग के योग्य होता है इस से लोक में भी गुण कर्म ही की मुख्यता होना विदित होता है जैसे श्रेष्ठ वर्ण अधर्म आचरण से निकृष्ट होता है ऐसा ही निकृष्ट वर्ण धर्म आचरण से उत्कृष्ट होता है यही मन्तव्य है—सत् पुरुष धार्मिक आप्त पक्षपातरहितों का न्याय से यही सिद्धान्त हो सक्ता है ऐसा युक्ति से निश्चय किया जाता है और ब्रह्मसूत्रों के निर्माता महर्षि वेदव्यास का भी यही सिद्धान्त निश्चय करने योग्य है अर्थात् उस के (शूद्रत्व के) अभाव निर्धारण में प्रवृत्ति होने से इस सूत्र में सत्य कथन मात्र से गोतम ऋषि ने जावाल के शूद्रत्व का निर्धारण करिके अर्थात् शूद्रत्व का अभाव मान कर उस के उपनयन करने व ब्रह्मविद्या के उपदेश करने में प्रवृत्त हुये यह विज्ञापन करने से ऐसा निश्चय करने योग्य है क्योंकि सत्य कथन न वर्णत्व है न गोत्रत्व है उत्तम गुणत्व व धर्मत्व ही है यही शूद्रत्व के अभाव निर्धारण का हेतु महर्षि गोतम जी ने स्वीकार किया है इस से जो वर्ण से गुण कर्म से भी शूद्र है उस का अधिकार नहीं है और जिस के सत्यता आदि धर्म गुण श्रद्धालुत्व व सत्कर्मों से जावाल के समान शूद्रत्व का अभाव निर्धारण किया गया है उस का अधिकार ही है युक्ति हेतु से शब्द से उस के अधिकार के निषेध का कोई प्रमाण निश्चय नहीं किया जाता। जो यह शङ्का होवे कि कोई स्मृतियों में ऐसे निषेधवाक्य पाये

जाते हैं कि वेद सुनने वाले शूद्र के कान में सीस और लाख भरना चाहिये तथा शूद्र जो है वह पशु व श्मशान के समान अशुचि है इस से शूद्र के समीप न पढ़ना चाहिये उस के उच्चारण में जिह्वा का छेदन (काटना) व धारण में शरीर का भेदन उचित होता है इस से शूद्र का अधिकार न होना सिद्ध होता है तो ऐसा नहीं है ऐसा अयुक्त वाक्य किसी आप्त का नहीं होता इस से किसी पक्षपातग्रस्तहृदय स्वार्थसाधक से प्रक्षिप्त ही जानना चाहिये क्योंकि वेद का श्रवण कोई निषिद्ध कर्म महापाप नहीं है जिस से सुनने वाले के लिये जिह्वाछेदन आदि दण्डविधान उचित होवे। यदि परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना, उपासना व ज्ञान व कर्म विषयक वेदवाक्यों में एकत्र अनेक शब्दों के पढ़ने व सुनने में दण्डविधान है तो भिन्न२ ईश्वर ब्रह्म परमात्मा सविता आदि वेदोक्त शब्दों के कहने वाले व सुनने वाले भी शूद्र दण्ड के योग्य मन्तव्य हैं। ऐसा होने में ईश्वर के नाम स्तुति कहने व स्मरण करने में भी शूद्र का अधिकार होना सिद्ध न होगा शूद्र में ईश्वर के ऐसे द्वेष व पक्षपात होने का कोई हेतु चिन्तन करने योग्य नहीं है और ब्राह्मण को आगे करके चारों वर्णों को सुनाये ऐसे विधिवाक्य से इतिहास पुराणों में भी विधि पाई जाती है तुल्य प्रमाण बल होने से इस विधिवाक्य से निषेध वाक्य का प्रतिषेध होने में यह विधिवाक्य स्वीकार करना चाहिये अथवा परस्पर के विरोध से दोनों के त्याग में कोई अन्य प्रमाण खोज करना चाहिये दोनों के प्रमाण के अनुसन्धान करने में युक्ति अन्य आप्तवाक्य श्रुति स्मृति प्रमाण की सहायता से विधिवाक्य की सबलता होने से निषेध वाक्य ही निर्बल होने से अप्रमाण रूप त्यागने योग्य है। आधुनिक भाष्य व टीकाकारों ने जो सर्वथा अधिकार न होना वर्णन किया है और जिन्हों ने ऐसा वर्णन किया है कि स्मृति इतिहास व पुराणों में निषेध के समान विधि भी मिलती है इस से वेद पूर्वक अर्थात् वेदपठनपूर्वक अधिकार नहीं है यह सिद्धान्त है वह असत्य आर्षसिद्धान्त वा वेद विरुद्ध ही प्रतीत होता है क्योंकि निषिद्ध कर्म से ब्राह्मण भी शूद्रत्व वा अनधिकारत्व व अधिकार को प्राप्त हो सक्ता है यद्यपि लोक में ऐसा व्यवहार (वर्त्ताव) न होवे तथापि न्याय से और आप्तवाक्य से यही सिद्धान्त निश्चय किया जाता है इस में प्रमाण वर्णन किया जाता है शुक्राचार्य जी ने शुक्रनीति नामक अपने ग्रन्थ में यह कहा है कि इस संसार में जाति से अर्थात् कुल में जन्म होने मात्र से न ब्राह्मण है न क्षत्रिय है न वैश्य है

न शूद्र है न म्लेच्छ है इन का भेद गुण व कर्मों से है अध्याय १ श्लोक ३९ सब जीव ब्रह्मा से उत्पन्न होने से क्या ब्राह्मण हो सक्ते हैं अर्थात् नहीं। वर्ण से और पिता से ब्रह्म तेज की प्राप्ति नहीं हो सक्ती अ० १ श्लोक ३९ ऐसा ही श्रीमहर्षि आपस्तम्ब ऋषि ने अपने सूत्रों में कहा है कि धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम वर्ण में प्राप्त होता है और वह उस वर्ण में गिना जावे कि जिस २ के वह योग्य होवे वैसा ही अधर्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने नीचे २ वाले वर्ण को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे जिसके योग्य होवे और सब वर्णों का विद्यारूप वेद में अधिकार होने के विषय में साक्षात् यजुर्वेद में छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र प्रमाण है इसी कारण से अधिकार निरूपण के अन्तिम सूत्र में महात्मासूत्रकार ने यह कहा "और श्रवण अध्ययन अर्थ का प्रतिषेध होने से स्मृति से"। इस सूत्र में निषेध प्रमाण में स्मृतिमात्र का नाम कहा है चकार जिस का अर्थ "और" ग्राह्य है वह जैसे और "उस का" अभाव निर्धारण करने में प्रवृत्ति होने से" इस सूत्र में पूर्व कहे हुये हेतु से अन्य हेतु दिखाने के लिये कहा है ऐसा ही इस सूत्र में कहा है इसी से चकार का अर्थ और ग्रहण करके। " और श्रवण अध्ययन अर्थ का प्रतिषेध होने से स्मृति से" ऐसा सूत्र का अर्थ कहा गया है वेद का प्रमाण होने में उस के विरुद्ध स्मृति वाक्यों का अप्रामाण्य ही है उक्त मन्त्र यह है—

"यथेमां वाचं कल्याणीं"—

इत्यादि इस का व्याख्यान यह है यथा यह प्रत्यक्ष रूप वेदचतुष्टयी—कल्याण रूप वा कल्याण की सिद्ध करने वाली वाणी को सब जनों के लिये अर्थात् सब मनुष्यों के लिये मैं कहता हूं वा उपदेश करता हूं किन जनों के लिये यह विज्ञापन वा विवरण के लिये यह कहा है ब्राह्मण क्षत्रिय के लिये वैश्य के लिये शूद्र के लिये अपने पुत्र के लिये सेवक सम्बन्धियों के लिये अति शूद्र के लिये यथा के साथ तथा का नित्य सम्बन्ध है इस से यथा कहने से अध्याहार से तथा शब्द ग्राह्य है तथा के ग्रहण से यह अर्थ होता है कि यथा मैं इस वाणी को कहता हूं तथा (वैसे ही) हे विद्वान् लोगो तुम सब मनुष्यों के लिये इस वेद वाणी को कहो उपदेश करो अर्थात् मुझ पक्षपातरहित की वाणी सब के हित के लिये है वह तुम को सब के लिये वक्तव्य है अर्थात् वह सब को सुनाने व पढ़ाने योग्य है—कोई कहते हैं कि जन शब्द से ब्राह्मण ही अथवा तीन वर्णों का

अधिकार है इस से ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य तक ग्रहण करना चाहिये । यह उन का कहना युक्त नहीं हैं क्यों कि जनेभ्यः अर्थ जनों के लिये यह कहकर आगे मन्त्र में पृथक् २ नामों को कहा है जो ईश्वर ब्राह्मण वा तीन ही वर्ण मात्र को अधिकार देता व उन ही मात्र का अधिकार होता तो शूद्रादिकों के पृथक् कर के प्रत्येक के नाम वर्णन न करता इस से विधि ही निश्चय करने योग्य है वेदप्रमाण की अनुकूलता से जो अन्यत्र विधिविषयक वाक्य हैं उन की सबलता वा पुष्टता सिद्ध होती है न्याय से आप्तवचन के प्रमाण से श्रुति से भी विधि सिद्ध होने से सर्वथा निषेध का प्रामाण्य नहीं है स्मृति वाक्य के चरितार्थ होने के लिये निषेध भी उक्त प्रकार से मन्तव्य है यह सिद्धान्त है ॥

इत्यधिकारनिरूपणविषये समीक्षाकरे चतुर्थोऽध्यायः ॥

———*———

वेदान्तदर्शनस्यद्वितीयाध्याये तृतीयपादेजीवात्मनोऽनुत्पत्तिज्ञातृत्वनिरूपणाधिकरणेप्रसंगात् सवाएषमहानजआत्मायोयंविज्ञानमयः प्राणेष्विति श्रुतेरात्मनोविभुत्वंतथाएषोऽणुरात्माचेतसावेदितव्य इतस्तस्याणुत्वावगमात् किंपरिमाणंतत्त्वमितिसंशयेउत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् इत्यादिसूत्रैरात्मपरिमाणंनिरूपितं तेषांयानिसमीक्ष्याणितान्यत्रलिख्यन्तेअद्वैतमतानुसारेण निम्नलिखितजीवात्मपरिमाणविषयकसूत्राणांव्याख्यानानन्तरंसिद्धान्तोविचार्य्यते ॥

अथ भाषानुवादः ॥

वेदान्त दर्शन के द्वितीय अध्याय तृतीय पाद में जीवात्मा का उत्पन्न न होना व ज्ञाता होना निरूपण करने के अधिकरण में प्रसंग से इस श्रुति से जिस में यह वर्णन है कि निश्चय से सो यह आत्मा महान् अज (जन्मरहित) है जो यह प्राणों में (इन्द्रियों में) विज्ञानमय है आत्मा का विभु (व्यापक) होना तथा इस श्रुति से कि यह अणु आत्मा चित्त से (ज्ञान से) जानने योग्य है आत्मा का अणु होना विदित होने से कौनसा प्रमाण सत्य है यह संशय होने में उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् । अर्थ—उत्क्रान्ति (शरीर से निकलना) लोकान्तर का जाना आना सुनने से इत्यादि सूत्रों से आत्मा के परिमाण का निरूपण किया है उन सूत्रों में से जौन समीक्षा के योग्य हैं वह यहां लिखे जाते हैं निम्न लिखित जीवात्मा के परिमाण विषयक सूत्रों का अद्वैत मत के अनुसार व्याख्यान करने के पश्चात् सिद्धान्त विचार किया जाता है ॥

तद्गुणसारत्वात्तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् । सूत्र० ॥२९॥

तुशब्दःपक्षव्यावर्तयतिनैतदस्त्यणुरात्मेतिपरस्यैवतुब्रह्मणः प्रवेशश्रवणात् तादात्म्योपदेशाच्चपरमेव ब्रह्म जीवइत्युक्तं परमेवचेद्ब्रह्मजीवः तस्माद्यावत्पर ब्रह्मतावानेवजीवोभवितुमर्हति परस्यब्रह्मणोविभुत्वमाम्नातं तस्माद्विभुर्जीवः तथा च सवाएषमहानजआत्मायोयंविज्ञानमयः प्राणेष्वित्येवजातीयकाजीवविषयाविभुत्ववादाःसमर्थिताभवन्तियदिजीवोविभुःकथंतर्ह्यणुत्वादिव्यपदेशइत्यत आहतद्गुणसारत्वात्तद्व्यपदेशइतितस्याः बुद्धेर्गुणाः तद्गुणाइच्छाद्वेषःसुखंदुःखमित्येवमादयस्तद्गुणाः सारंप्रधानंयस्यात्मनः संसारित्वेसंभवन्तिसतद्गुणसारः तस्यभावस्तद्गुणसारत्वंनहिबुद्धेर्गुणैर्विनाकेवलस्यात्मनः संसारित्वमस्तिबुद्ध्युपाधिधर्माध्यासनिमित्तंहिकर्तृत्वभोक्तृत्वादिलक्षणं संसारित्वमकर्तुरभोक्तुश्चासंसारिणोनित्यमुक्तस्यसतआत्मनस्तस्मात् तद्गुणसारत्वाद्बुद्धिपरिमाणेनास्य परिमाणव्यपदेशस्तदुत्क्रान्त्यादिभिश्चास्योत्क्रान्त्यादिव्यपदेशोनस्वतः जीवस्यौपचारिकमणुत्वंपारमार्थिकंचानन्त्यम् उपाधिगुणसारत्वाज्जीवस्याणुत्वव्यपदेशःप्राज्ञवत्यथाप्राज्ञस्यपरमात्मनःसगुणेषूपासनेषूपाधिगुणसारत्वादणीयस्त्वादिव्यपदेशःअणीयान्व्रीहेर्वायवाद्वामनोमयः प्राणशरीरइत्येवंप्रकारस्तद्वत्स्यादेतत्यदिबुद्धिगुणसारत्वादात्मनःसंसारित्वंकल्प्येततततोबुद्ध्यात्मनोर्भिन्नयोः संयोगावसानमवश्यंभावीत्यतोबुद्धिवियोगेसत्यात्मनोविभक्तस्यालक्ष्यत्वमसत्वमसंसारित्वंवाप्रसज्येतेत्यतउत्तरंपठति ।

अथ भाषानुवाद ः ॥

तद्गुणसारत्वात्तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् । सू० ॥ २९ ॥

वही प्रधान गुण है जिस का ऐसा होने से उस का कथन है प्राज्ञ के समान ॥ २९ ॥

आत्मा अणु नहीं है क्योंकि परब्रह्म ही का जीव रूप से प्रवेश करना सुना जाता है और तादात्म्य को अर्थात् वही रूप होने को भी उपदेश है पर ब्रह्म हो जीव है यह कहा गया है पर ब्रह्म ही जीव है तिस से जितना पर ब्रह्म है उतना ही जीव होना चाहिये श्रुति में ब्रह्म को विभु कहा है इस से जीव भी विभु है ऐसा होने में निश्चय से सो यह आत्मा महान् अज है जो यह प्राणों में विज्ञानमय है इस प्रकार की जीव विषय वाली विभु की प्रतिपादन करने वाली श्रुतियां घटित होती है जो जीव विभु है तौ

अणु होने का कथन क्यों है इस संदेह के निर्णय के लिये यह कहा है कि उस के अर्थात् बुद्धि के इच्छा द्वेष सुख दुःख आदि गुण ही सार होना (प्रधान वस्तु) जिस आत्मा के संसारी होने में संभव होता है अर्थात् संसारी अवस्था में बुद्धि के गुणों ही की आत्मा में मुख्यता है विना बुद्धि के गुणों के आत्मा का संसारित्व नहीं है। बुद्धि उपाधि धर्मों के अध्यास के कारण से कर्ता होना भोक्ता होना आदि रूप आत्मा का संसारित्व (संसारीपन) है शुद्धरूप आत्मा असंसारी नित्यमुक्त न कर्ता है न भोक्ता है। तिस बुद्धिगुणसार होने से बुद्धि के परिमाण से इस आत्मा के परिमाण का कथन है उसी की उत्क्रान्ति आदि (शरीर से निकलना अर्थात् मरण आदि) होने से इसकी (आत्मा की) उत्क्रान्ति आदि होना कहा जाता है स्वतः आत्मा का उत्क्रान्ति आदि होने का अभाव है। इस से जीव का औपचारिक अणुत्व (अणुरूप होना) है पारमार्थिक रूप से आत्मा अनन्त है। उपाधिगुणसार होने से जीव का अणु होना कहा है प्राज्ञ के समान अर्थात् जैसे प्राज्ञ परमात्मा का सगुण उपासना उपाधिगुणसार होने से अणु होने आदि का कथन है जैसे यह कहा है "अणीयान् व्रीहेर्वायवाद्वामनोमयः प्राणशरीरः" अर्थ-धान्य से यव से अतिसूक्ष्म मनमय प्राण शरीर रूप है इत्यादि इस प्रकार के श्रुति वाक्यों में कथन है वैसे ही यह जीवात्मा का अणु कथन है। अब यह शङ्का है कि जो बुद्धिगुणसार होने से आत्मा का संसारित्व है यह निश्चित होता है कि भिन्न आत्मा व बुद्धि के संयोग का अन्त अवश्य होने वाला है इस से बुद्धि के वियोग होने में आत्मा के असंसारी अस्तित्वरहित अलक्ष्य होने का प्रसंग होगा इस का उत्तर वर्णन करते हैं।

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ॥ ३०॥

नैवंशङ्कनीयंकुतः यावदात्मभावित्वात् बुद्धिसंयोगस्ययावदात्मासंसारीभवतितावदस्यसम्यग्दर्शनेनसंसारित्वं न निवर्तते तावदस्यबुद्ध्यासंयोगोनशाम्यति यावच्चायंबुद्ध्युपाधिसम्बन्धस्तावदेवास्य जीवस्यजीवत्वं संसारित्वञ्चपरमार्थतस्तु न जीवोनामबुद्ध्युपाधिपरिकल्पितस्वरूपव्यतिरेकेणास्ति नहिनित्यमुक्तस्वरूपात्सर्वज्ञादीश्वरादन्यश्चेतनधातुर्द्वितीयोवेदान्तार्थनिरूपणायामुपलभतेनान्योऽतोऽस्तिद्रष्टाश्रोतामन्ताविज्ञातारित्यादिश्रुतिभ्यः कथं पुनरवगम्यतेयावदात्मभावीबुद्धिसंयोग इतितद्दर्शनादित्याहतथाहिशास्त्रंदर्शयति, योऽयंविज्ञानमयः प्राणेषुहृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः ससमानः सन्नुभौलोकावनुसञ्चरतिध्यायतीवलेलाय-

तीवइत्यादितत्रविज्ञानमयः इतिबुद्धिमयइत्येतदुक्तंभवतिसमानः सन्नुभौलोका-
वनुसञ्चरति इतिचलोकान्तरगमनेप्यवियोगंबुद्ध्यादेर्दर्शयतिकेनसमानस्तयैवबु-
द्ध्याइतिगम्यतेसंनिधानात्तच्चदर्शयतिध्यायतीवलेलायतीवइत्येतदुक्तंभवतिना-
यंस्वतोध्यायतिनापिचलतिध्यायन्त्यां बुद्धौध्यायतीवचलन्त्यां चलतीवेतिअपि
चमिथ्याज्ञानपुरस्सरोयमात्मनोबुद्ध्युपाधिसम्बन्धः न च मिथ्याज्ञानस्यसम्य-
ग्ज्ञानादन्यत्रनिवृत्तिरस्तीत्यतोयावत् ब्रह्मात्मतानवबोधस्तावदयंबुद्ध्युपाधि-
सम्बन्धोनशाम्यतिननुसुषुप्तिप्रलययोर्नशक्यते बुद्धिसम्बन्धआत्मनोऽभ्युपगन्तुम् ।
सतासोम्यतदासम्पन्नोभवतिस्वमपीतोभवतिइतिवचनात् कृत्स्नविकारप्रलया
भ्युपगमाच्चतत्कथंयावदात्मभावित्वंबुद्धिसम्बन्धस्येत्यत्रोच्यते ॥

अथ भाषानुवादः ॥

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ॥३०॥

आत्मा के रहने तक होने वाला होने से दोष नहीं है यह देखनेसे ॥३०॥

आत्मा के रहने तक रहने से यह शङ्का करने योग्य नहीं है जब तक आत्मा संसारी रहता है यथार्थ आत्मज्ञान न होने से संसारित्व निवृत्त नहीं होता तब तक बुद्धि का संयोग रहता है जब तक बुद्धि का संयोग नहीं छूटता तब तक इस जीव का जीवत्व व संसारित्व है बुद्ध्युपाधि से कल्पना किये गये रूप से भिन्न परमार्थ से जीव नामक वस्तु नहीं है। वेदान्त के अर्थ निरूपण में नित्यमुक्तस्वरूप सर्वज्ञ ईश्वर से भिन्न अन्य दूसरा चेतन धातु व पदार्थ नहीं है क्योंकि श्रुति में कहा है—

नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता इत्यादि ॥

अर्थ—इससे अन्य देखने सुनने मानने जानने वाला नहीं है इत्यादि श्रुतियों से एक ही होना सिद्ध है ये कैसे सिद्ध होता है कि बुद्धि का संयोग आत्मा के संसारी रहने तक रहता है इसके लिये यह कहा है वह देखने से अर्थात् जीव का बुद्धिसम्बन्ध से जो कर्तृत्व भोक्तृत्व है वह शास्त्र में देखने से बुद्धि का संयोग रहना सिद्ध होता है यथा इस श्रुति में देखा जाता है अर्थात् इस श्रुति में यह वर्णित है—

योयं विज्ञानमयः प्राणेषु० इत्यादि॥

इस सम्पूर्ण श्रुति का अर्थ यह है जो ये हृदय के भीतर इन्द्रियों में विज्ञानमय पुरुष है सो विज्ञान (बुद्धि) के समान हुआ अर्थात् बुद्धिरूप हो

दोनों लोक में बुद्धि के साथ ध्यान करता व लीला करता हुआ बुद्धि के समान जाता व विचरता है। इस प्रकार से आत्मा के लोकान्तर के जाने में भी बुद्धि का वियोग नहीं होता यह श्रुति देखाती है। आत्मा आप से न ध्यान कर्त्ता है न चलता है ध्यान करती हुई बुद्धि में ध्यान करता व चलती हुई बुद्धि में चलता है ऐसा बुद्धि के समान होना विदित होता है। यह जो आत्मा का बुद्ध्युपाधि सम्बन्ध है वह मिथ्याज्ञानपूर्वक है सम्यग्ज्ञान से (अच्छे प्रकार तत्वज्ञान होने से) भिन्न अन्य उपाय से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति नहीं होती इस से जब तक ब्रह्मात्मा का बोध नहीं होता तब तक बुद्ध्युपाधि का सम्बन्ध नहीं छूटता यदि यह शङ्का हो कि सुषुप्ति व प्रलय में बुद्धि सम्बन्ध आत्मा के साथ नहीं कहा जा सक्ता क्योंकि श्रुति में—

सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति ॥

अर्थ—हे सोम्य! तब सत् शब्दवाच्य ब्रह्म में प्राप्त होता है अपने में लीन होता है इत्यादि ऐसा कहा है प्रलय सुषुप्ति में सब विकार का लय होना अंगीकार करने व बुद्धि का सम्बन्ध ज्ञात न होने पर आत्मा के रहने तक बुद्धि का सम्बन्ध कैसे मानना युक्त है इस के उत्तर में यह वर्णन करते हैं—

पुंस्त्वादिवत्तस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥ ३१ ॥

यथालोकेपुंस्त्वादीनि बीजात्मनाविद्यमानान्येववाल्यादिष्वनुपलभ्यमानानिअविद्यमानवदभिप्रेयमाणानि यौवनादिष्वाविर्भवन्ति नाविद्यमानान्युत्पद्यन्ते खण्डादीनामपितदुत्पत्तिप्रसङ्गात् एवमपिबुद्धि सम्बन्धः शक्त्यात्मनाविद्यमानएवसुषुप्तिप्रलययोः पुनः प्रबोधप्रसवयोराविर्भवति तस्मात् सिद्धमेतद्यावदात्मभावीबुद्ध्युपाधिसम्बन्ध इति ॥

अथ भाषानुवादः ॥

पुंस्त्वादिवत्तस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥ ३१ ॥

पुंस्त्वादि के समान उस विद्यमान ही की प्रकटता होने के योग से ॥३१॥

जैसे लोक में पुंस्त्व (युवापन वा जवानी) आदि बीजरूप विद्यमान ही रहते हैं परन्तु बाल्यावस्था आदि में ज्ञात नहीं होते अविद्यमान के समान बने हुये यौवन (जवानी) आदि में प्रकट होते हैं अविद्यमान उत्पन्न नहीं होते जो अविद्यमान की उत्पत्ति होती तो नपुंसक में भी पुंस्त्व ...

उत्पत्ति होती ऐसा ही यह बुद्धिसम्बन्ध है शक्ति आत्मा से अर्थात् शक्ति कारणरूप से सुषुप्ति वा प्रलय में भी विद्यमान रहता है सृष्टि होने व जागने के समय में प्रकट होता है इस से बुद्धिसम्बन्ध का यावदात्मभावी होना अर्थात् आत्मा के रहने तक रहना सिद्ध है ॥ ३१ ॥

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमोवान्यथा ॥ ३२ ॥

तच्चात्मनउपाधिभूतमन्तः करणं मनोबुद्धिर्विज्ञानं चित्तमितिचानेकधातत्र तत्राभिलप्यतेक्वचिच्चवृत्तिविभागेनसंशयादिवृत्तिकं मनइत्युच्यतेनिश्चयादिवृत्तिकाबुद्धिरितिनच्चैवंभूतमन्तः करणमवश्यमस्तीत्यभ्युपगन्तव्यम्। अन्यथाह्यनभ्युपगम्यमानेतस्मिन्नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गःस्यात् आत्मेन्द्रियविषयाणामुपलब्धिसाधनानांसन्निधानेसतिनित्यमेवोपलब्धिः प्रसज्ज्येत अथवा सत्यपिहेतुसमवधानेफलाभावस्ततोऽपिनित्यमेवानुपलब्धिः प्रसज्ज्येत । नचैवंदृश्यतेतस्माद्यस्यावधानानवधानाभ्यामुपलब्ध्यनुपलब्धीभवतः तन्मनः अन्तःकरणशब्देनवाच्यंमनसोवृत्तिरेवबुद्धिर्यतः कामादयश्चास्यमनसोवृत्तयइतिश्रुतिर्दर्शयतिकामः सङ्कल्पोविचिकित्साश्रद्धाऽश्रद्धाधृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वंमन एवइतितस्माद्युक्तमेतत्तद्गुणसारत्वात्तद्व्यपदेशइति। नैषांसूत्राणामीदृग्व्याख्यानं युक्तमित्यवगन्तव्यंयतोविवेचनेनात्मपरमात्मनोस्सर्वथाऽभेदत्वंबुद्ध्युपाधिमात्रेणजीवत्वंपरमात्मनोजीवस्यभिन्नत्वञ्च परमार्थतएकत्वंसम्यग्दर्शनेनजीवाद्बुद्धेःसंयोगनिवृत्तित्वञ्चोपपद्यते। कुतःनित्यसर्वज्ञपरमात्मनिनाविद्याप्राप्तिःसंभवतिययातस्यबुद्ध्यनुगुणत्वंतदुपाध्युपहितत्वं च स्यात्। तत्प्राप्तौवापरमात्मनःसर्वज्ञत्वहानिरतस्तत्स्वरूपप्रतिपादकश्रुतेरनृतत्वञ्चावगम्यते सम्यग्दर्शनेजीवात्मनोविभक्ता बुद्धिर्भिन्नत्वेनतिष्ठति वा परमात्मनि लीयते परमात्मनोऽन्यप्रदेशे संयुज्यकञ्चिदन्यं जीवमुत्पादयति वेतिजीवाद्वियोगेबुद्धेरन्तःकरणस्य वा का गतिरिति विवेचनीया " नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः " इतिस्मृतिवचनात्तर्केणाप्यस्यैवसिद्धेर्नसर्वथाबुद्धेरभावोनिश्चीयतेबुद्धिसत्तानिश्चितेयदि सम्यग्दर्शनेजीवाद्विभक्ताब्रह्मणिलीयतेतर्हि जीवपरयोरभेदत्वेजीवएवप्राप्तासेत्स्यतिएवंसतितस्यानित्ययोगएवसिद्धौसत्यां सम्यग्दर्शनेसंसारित्वनिवृत्तौबुद्ध्यासंयोगः शाम्यतिइत्युक्तेरसंगतिर्गम्यते ब्रह्मणोऽन्यस्मिन्प्रदेशेप्राप्याऽन्यं जीवमुत्पादयतिचेद्वियुक्तजीवस्याप्येवमुत्पत्त्यनुमानेतत्संयोगवियोगाभ्यां जीवस्योत्पत्तिविनाशसिद्धौ सत्यामेषमहानजआत्माइतिश्रुतावुक्तमजत्वमनृतंस्यात्यदिब्रह्मणि प्राप्ता बुद्धिः स्वेन जीवत्वजनकधर्मेण जीवत्वं नोत्पादयति तर्हि

वियुक्तजीवेऽपितत्संयोगेनधर्मेण वा जीवत्वप्रतिपादनंनसंभवति तस्या ब्रह्मणि
प्राप्तौवोक्तप्रकारेणजीवेच्छ्वप्राप्तौवाच्यायांनजीवाद्वियुक्तास्यात् ब्रह्मणोविभा-
गत्वेनास्थितायांद्वैतसिद्धेरद्वैतकथनं बुद्धिसंयोगवियोगाभ्यां च जीवत्वाजीवत्वं
ब्रह्माज्ञानत्वकथनञ्चायुक्तमेवावगम्यते अन्यच्च एवंसमीक्षितं श्रीभाष्येयदि मन्वी-
तउपाध्युपहितंब्रह्मजीवः सचाणुपरिमाणः अणुत्वञ्चावच्छेदकस्यमनसोऽणुत्वा
त्सचावच्छेदोऽनादिरेवमुपाध्युपहिते देशे सम्बध्यमानाः दोषाअनुपहिते परे
ब्रह्मणि न सम्बध्यन्तेइत्ययं प्रष्टव्यः किमुपाधिनावच्छिन्नोब्रह्मखण्डोऽणुरूपो
जीवउताच्छिन्नएवाणुरूपोपाधिसंयुक्तोब्रह्मप्रदेशविशेषः । उतोपाधिसंयुक्तं ब्रह्म
स्वरूपम् उतोपाधिसंयुक्तंचेतनान्तरम् । अथोपाधिरेवेति अच्छेद्यत्वाद्ब्रह्मणः प्र-
थमकल्पोनकल्पते आदिमत्वं च जीवस्यस्यात् एकस्यसतोद्वैधीकरणं हि छेदनं
द्वितीयेतुकल्पेब्रह्मणएवप्रदेशविशेषे उपाधिसम्बन्धादौपाधिकास्सर्वेदोषास्त-
स्यैवस्युः उपाधौगच्छत्युपाधिनास्वसंयुक्तब्रह्मप्रदेशाकर्षणायोगादनुक्षणमुपाधि
संयुक्तब्रह्मप्रदेशविशेषभेदात्क्षणे क्षणेबन्धमोक्षौस्याताम् आकर्षणेचाच्छिन्नत्वात्
कृत्स्नस्यब्रह्मणआकर्षणं स्यात् निरंशस्यव्यापिनआकर्षणं न संभवतीतिचेत्त-
दुपाधिरवगच्छतीतिपूर्वोक्तएवदोषःस्यात् अच्छिन्नब्रह्मप्रदेशेषुसर्वोपाधिसंसर्गे
सर्वेषां च जीवानांब्रह्मणएवप्रदेशत्वेनाभेदप्रतिसंधानंस्यात् प्रदेशभेदादप्रति
संधानेचैकस्यापिस्वोपाधौगच्छतिसतिप्रतिसंधानं न स्यात् तृतीयेतुकल्पेब्रह्म
स्वरूपस्यैवोपाधिसम्बन्धेन जीवत्वापातात् तदतिरिक्तानुपहितब्रह्मासिद्धि
स्स्यात् सर्वेषु च देहेष्वेकएवजीवःस्यात् तुर्येतुकल्पेब्रह्मणोऽन्यएवजीवइति
जीवभेदस्यौपाधिकत्वं परित्यक्तंस्यात्चरमेपक्षेचार्वाकपक्षएवगृहीतः स्यात्के
चिदद्वितीयत्वंब्रह्मणोऽभ्युपयन्तएवंवदन्तिएकस्यब्रह्मणः प्रतिबिम्बभूतानां
जीवानांसुखित्वदुःखित्वादयएकस्यैवमुखस्यप्रतिबिम्बानांसूर्यस्यप्रतिबिम्बा-
नां वामणिकृपाणदर्पणादिषूपलभ्यमानानामल्पत्वमहत्वकं पत्वस्थिरत्वम-
लिनत्वविमलत्वादिवत्तत्तदुपाधिवशाद्व्यवस्थाप्यन्तेतत्रेदंविमर्शनीयम् अल्पत्व
मलिनत्वादयऔपाधिकादोषाः कदानश्येयुः मणिदर्पणाद्युपाध्यपगमे इति चे-
त्किंतदल्पत्वाद्याश्रयप्रतिबिम्बः तिष्ठतिनवा ? तिष्ठतिचेत् तत्स्थानीयस्यजी-
वस्यापिस्थितत्वादनिर्मोक्षप्रसङ्गःनश्यतिचेत्तद्वदेवजीवनाशात्स्वरूपोच्छित्ति-
लक्षणोमोक्षः स्यात् किंचयस्यच्चापुरुषार्थदोषप्रतिभासः तस्यतदुच्छेदः पुरुषार्थः
तत्रकिमौपाधिकदोषप्रतिभासोबिम्बस्थानीयस्य ब्रह्मणःउतप्रतिबिम्बस्थानी-
यस्यजीवस्य उतान्यस्यकस्यचित् आद्ययोः कल्पयोर्दृष्टान्तोऽयं न संगच्छतेमु-

खस्यमुखप्रतिबिम्बस्य चाल्पत्वादिदोषप्रतिभासशून्यत्वात् नहिमुखंमुखप्रतिबिम्बं वा चेतयते ब्रह्मणोदोषप्रतिभासेब्रह्मणोऽविद्याश्रयत्वप्रसंगश्च, नहिकश्चित् तत्वज्ञभ्रान्तिरहितःप्रतिविम्बितवस्तुनितदुपाधिदोषेणस्वसकलस्वरूपस्यतदवयवरूपस्य वा प्रतिविम्बमल्पत्वदीर्घत्वमलिनत्वकम्पनत्वादियुक्तान्यथाभावेन दृष्टास्वरूपं प्रतितद्बुद्धिश्चिनोतितेनस्वरूपं प्रतितस्याभावएवानुभूयते एवमुपाधिदोषेण सर्वज्ञभ्रान्तिदोषासंस्पृष्टब्रह्मणोप्यन्यथाप्रत्ययोन संभवति तृतीयोऽपि कल्पोनकल्प्यतेविम्बप्रतिबिम्बस्थानीयजीवब्रह्मव्यतिरिक्तस्यद्रष्टुरभावात् किञ्चाविद्याकल्प्यस्यजीवस्यकल्पकः कइतिविचारणीयंनतावदविद्या अचेतनत्वात् नापिजीवआत्माश्रयदोषप्रसंगात् शुक्तिकारजतादिवदविद्याकल्प्यत्वाच्चजीवभावस्यब्रह्मैवकल्पकमितिचेत् ब्रह्माज्ञानमेवायातम् तदयुक्तंश्रुतिविरुद्धब्रह्मस्वरूपाभावरूपमयुक्तमप्रमाणमस्वीकार्यमितिअतउक्तसूत्राण्येवंव्याख्येयानि—

अथ भाषानुवादः ॥

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमोवाऽन्यथा ॥३३॥

अन्यथा मानने में अर्थात् बुद्धि उपाधि न मानने में नित्य उपलब्धि वा अनुपलब्धि होने का प्रसंग होगा अथवा दो में से एक का नियम होगा ३३

आत्मा का उपाधि रूप अन्तःकरण, मन, बुद्धि विज्ञान चित्त अनेक प्रकार से वृत्ति भेद से कहा जाता है कहीं वृत्ति विभाग से संशयादि वृत्ति वाला मन कहा जाता है निश्चय आदि वृत्ति रूप बुद्धि कही जाती है इस प्रकार का जिस की संशय आदि, निश्चय आदि वृत्तियां हैं ऐसा कोई अन्तःकरण वस्तु अवश्य है यह मानने योग्य है ऐसा न मानने में आत्मा में नित्य उपलब्धि वा अनुपलब्धि (ज्ञान होने व ज्ञान न होने) का प्रसंग होगा अथवा उपलब्धि के साधन जो आत्मा इन्द्रिय व विषय हैं उन के सन्निधान होने में (समीप वर्तमान होने वा संयोग होने में) नित्य ही उपलब्धि होगी अथवा जो पदार्थ ज्ञान धारण करने का हेतु होने में भी उस के फल का अभाव है तो नित्य ही अनुपलब्धि का (ज्ञान न होने का) प्रसंग होगा परन्तु ऐसा होना विदित नहीं होता इस से जिस के संयोग होने से उपलब्धि होती है और न होने से उपलब्धि नहीं होती वह मन है अन्तःकरण शब्द से वाच्य मन की वृत्ति ही बुद्धि है क्योंकि काम आदि सब मन ही की वृत्तियां हैं ऐसा श्रुति वर्णन करती है यथा "कामः संकल्पो विचिकित्सा" इत्यादि इस श्रुति में यह कहा है कि काम संकल्प संशय श्रद्धाऽश्रद्धाधृति (धैर्य्य) अधृति लज्जा

बुद्धिमय ये सब मन ही हैं। इस से बुद्धिगुणप्रधान होने से बुद्धि के समान आत्मा का अणु होना कहना युक्त है। इन सूत्रों का ऐसा व्याख्यान यथार्थ न समझना चाहिये क्योंकि विचार करने से आत्मा व परमात्मा का सर्वथा अभेद होना बुद्ध्युपाधि मात्र से जीव होना व परमात्मा से जीव का भिन्न होना परमार्थ से एक होना तत्वज्ञान से जीव से बुद्धि के संयोग की निवृत्ति होना सिद्ध नहीं होता है क्योंकि नित्य सर्वज्ञ परमात्मा में अविद्या का प्राप्त होना सम्भव नहीं होता है जिस से ब्रह्म का बुद्धि के अनुगुण होना व बुद्धि के उपाधि से उपहित होना माना जाय अविद्या की प्राप्ति मानने में परमात्मा के सर्वज्ञ होने की हानि होती है उस से परमात्मा के स्वरूप का नाश होना व सर्वज्ञता प्रतिपादन करने वाली श्रुति का असत्य होना सिद्ध होता है और यह विचार करने योग्य है कि जीव आत्मा से विभाग को प्राप्त हुई बुद्धि भिन्न रूप से स्थित होती है अथवा परमात्मा में लीन होती है अथवा परमात्मा के अन्य प्रदेश में संयोग को प्राप्त हो किसी अन्य जीव को उत्पन्न करती है जीव से वियोग होने में बुद्धि वा अन्तःकरण की क्या गति होती है असत् से (जो नहीं है उस से) भाव नहीं होता है जो सत् है उस का अभाव नहीं होता है इस गीता स्मृति के वचन से और तर्क से भी यही सिद्ध होने से सर्वथा बुद्धि का अभाव होना निश्चित नहीं होता बुद्धि का होना वा रहना निश्चित होने में जो सम्यग्ज्ञान वा तत्वज्ञान के होने में जीव से विभक्त (भिन्न हुई) बुद्धि ब्रह्म में लीन होती है तो जीव व परमात्मा ब्रह्म के भेद न होने में जीव ही में प्राप्त होना सिद्ध होगा ऐसा होने में उस का नित्य योग ही सिद्ध होने में सम्यग्दर्शन होने में (पूर्ण ज्ञान वा तत्वज्ञान होने में) संसारित्व निवृत्त होने में बुद्धि का संयोग शान्त होता है वा नहीं रहता ऐसा कहना असंगत विदित होता है जो ऐसा माना जावे कि ब्रह्म के अन्य प्रदेश में प्राप्त हो अन्य जीव को उत्पन्न करती है तो वियुक्त (वियोग को प्राप्त) जीव को भी ऐसा ही उत्पत्ति अनुमान करने में उस के संयोग व वियोग से जीव की उत्पत्ति व विनाश सिद्ध होने में य एष महानजात्मा अर्थ—यह आत्मा महान् वा अज (उत्पत्ति रहित) है इस श्रुति में कहा हुआ अजत्व असत्य होगा जो ब्रह्म में प्राप्त भी बुद्धि अपने जीव उत्पन्न करने के धर्म से जीवत्व को उत्पन्न नहीं करती है तो वियुक्त जीव में भी उस के संयोग से व धर्म से जीवत्व का प्रतिपादन संभव नहीं होता है अथवा

उस के ब्रह्म में प्राप्त होने में उक्त प्रकार से जीव ही में प्राप्ति वाच्य होने जीव से वियुक्त न होगी ब्रह्म से भिन्न उस की स्थिति होने में द्वैत सिद्ध होने से अद्वैत कहना बुद्धि के संयोग व वियोग से जीवत्व अजीवत्व वा ब्रह्म का अज्ञानत्व कहना अयुक्त ही विदित होता है और श्रीभाष्य में अद्वैत मत की ऐसी समीक्षा की गई है कि जो ऐसा मानें कि उपाधि उपहित ब्रह्म जीव है व अणुपरिमाण है और अणुत्व अवच्छेदक (व्यावृत्ति धर्मयुक्त) मन के अणु होने से और वह अवच्छेद (पृथकता वा व्यावृत्तिधर्म) अनादि है ऐसे उपाधि उपहित देश में सम्बन्ध को प्राप्त हुये दोष उपाधि को न प्राप्त हुये परब्रह्म में सम्बन्ध को नहीं प्राप्त होते तो अद्वैतवादी से यह प्रश्न करने योग्य है कि उपाधि से अवच्छिन्न (भिन्न हुआ) ब्रह्म का खण्ड अणुरूप जीव है अथवा अछिन्न ही (भिन्न न हुआ) अणुरूप उपाधिसंयुक्त ब्रह्म का प्रदेश विशेष है अथवा उपाधिसंयुक्त ब्रह्मस्वरूप है अथवा उपाधिसंयुक्त अन्य चेतन है अथवा उपाधि ही है ब्रह्म के अछेद्य होने से (काटने वा खण्ड करने योग्य न होने से) प्रथम कल्प कल्पित नहीं हो सकता वा कल्पना योग्य नहीं है और जीव का आदिमान् होना सिद्ध होगा विद्यमान एक को काटकर दो करना छेदन है ऐसा न होसकने से ब्रह्म अछेद्य है । दूसरे कल्प में ब्रह्म ही के प्रदेश विशेष में उपाधिसम्बन्ध होने से सब औपाधिक दोष ब्रह्म के होंगे उपाधि के चलने में उपाधि से संयुक्त जो अपना ब्रह्मप्रदेश है उस के आकर्षण का योग न होने से अर्थात् उस का उपाधि से पृथक् करलेना न हो सकने से उपाधिसंयुक्त ब्रह्म के प्रदेश विशेष होने के भेद से क्षण क्षण में बन्ध व मोक्ष दोनों ब्रह्म को होवेंगे आकर्षण करने में अखण्ड होने से सम्पूर्ण ब्रह्म का आकर्षण होगा परन्तु अंशरहित व्यापक का आकर्षण संभव नहीं होता है जो यह कहा जावे तो उपाधि ही चलती है यह सिद्ध होने वा मानने में पूर्व उक्त ही (जो पहले कहे गये वही) दोष होवेंगे । अछिन्न (अखण्ड) ब्रह्मप्रदेशों में सब उपाधियों का संसर्ग होने में और सब जीव ब्रह्म के प्रदेश रूप होने से सब जीवों का भेदरहित प्रतिसंधान (ज्ञान व स्मरण) होगा प्रदेशभेद से प्रतिसंधान न होने में अपनी उपाधि के चलने में एक का भी प्रतिसंधान न होगा । तृतीय कल्प में उपाधि सम्बन्ध से ब्रह्मस्वरूप ही का जीवत्व होने से उससे भिन्न उपाधि रहित ब्रह्म की सिद्धि न होगी और सब देहों में एक ही जीव होगा। चौथे कल्प में ब्रह्म से जीव अन्य ही होगा

ऐसा होने में औपाधिक जीव होने के पक्ष का त्याग होजायगा और अन्त के पक्ष में चारवाक मत का ग्रहण होगा वेदान्त मत का त्याग होगा कोई ब्रह्म अद्वितीयत्व के मानने वाले ऐसा कहते हैं कि एक ही ब्रह्म के प्रतिबिम्ब रूप जीवों का सुखी व दुःखी होना आदि मणि कृपाण दर्पण आदिकों में प्रत्यक्ष हुये एक ही मुख के वा सूर्य के प्रतिबिम्बों का छोटा होना बढ़ना घटना कांपना मलिन होना आदि के समान भिन्न २ उपाधिवश से भेद को प्राप्त होते हैं इस में यह विचारने योग्य है कि अल्पत्व मलिनत्व आदि औपाधिक दोष कब न होंगे वा कब नष्ट होंगे। जो यह कहा जावे मणि दर्पण के न रहने में। तो यह विचारणीय है कि उन अल्पत्व आदि का आश्रयप्रतिबिम्ब स्थित रहता है या नहीं जो स्थित रहता है तो प्रतिबिम्ब स्थानीय जीव के भी स्थित रहने से मोक्ष न होने का प्रसंग होगा और जो नष्ट होता है तो वैसे ही जीव का नाश होने से स्वरूप नाश होना रूप मोक्ष होगा जिस को दोषों का प्रतिभास रूप अनर्थ रूप होता है उस को उस का नाश पुरुषार्थ होता है इस में यह निर्णय के योग्य है कि औपाधिक दोष प्रतिभास (दोषों का प्रतिभाषित होना) बिम्ब स्थानीय ब्रह्म का है अथवा प्रतिबिम्ब स्थानीय जीव का ? अथवा किसी अन्य का ? पहले दोनों कल्पों का दृष्टान्त घटित नहीं होता क्योंकि मुख व मुख के प्रतिबिम्ब को अल्पत्व आदि दोषों का प्रतिभास नहीं होता क्योंकि मुख वा मुख का प्रतिबिम्ब नहीं जानते ब्रह्म को दोष प्रतिभाषित होने में ब्रह्म अविद्या का आश्रय होगा अर्थात् ब्रह्म में अविद्या प्राप्त होने का दोष प्राप्त होगा कोई तत्त्वज्ञ भ्रांति रहित प्रतिबिम्बित वस्तु मणि दर्पण जल आदि में उस के उपाधि दोष से अपने सम्पूर्ण रूप व अवयव रूप के प्रतिबिम्ब अल्पत्व दीर्घत्व कंपनत्व मलिनत्व आदि अन्यथाभावयुक्त देख कर अपने स्वरूप में वैसे ही होना निश्चय नहीं करता है अपने स्वरूप में उपाधि दोष का न होना ही अनुभव करता है ऐसे ही सर्वज्ञ भ्रान्तिदोषरहित ब्रह्म को उपाधि दोष से अन्यथा प्रत्यय होना संभव नहीं होता है तीसरा कल्प भी कल्पित नहीं होसकता क्योंकि बिम्ब प्रतिबिम्ब स्थानीय ब्रह्म व जीव से भिन्न देखने वाले का अभाव है अर्थात् बिम्ब प्रतिबिम्ब अपने को देखते व जानते नहीं हैं तीसरा कोई देखनेवाला नहीं है इस से उक्त कथन अयुक्त है अन्य विचार यह है कि अविद्या कल्प्य (अर्थात् अविद्या से कल्पना के वा होने के योग्य) जीव का

कल्पक (कल्पना करनेवाला) को है पहले अचेतन होने से अविद्या नहीं है आत्माश्रय दोष होने के प्रसङ्ग से जीव भी नहीं है सीप व चांदी के समान अविद्या कल्प्य होने से जीव भाव का ब्रह्म ही कल्पक है ऐसा कहा जावे तो ब्रह्म का अज्ञान सिद्ध हुआ यह अयुक्त श्रुतिविरुद्ध ब्रह्मस्वरूप के अभाव रूप अप्रमाण स्वीकार करने योग्य नहीं है इस से उक्त सूत्र इस प्रकार से व्याख्यान के योग्य हैं ॥

तद्गुणसारत्वात्तुतद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् २९

विज्ञानेतिष्ठन् विज्ञानंयज्ञंतनुतेज्ञानस्वरूपमत्यन्तनिर्मलम् परमार्थतइत्यादिषुज्ञानमेवात्मेति व्यपदिश्यतेअतोनज्ञाताऽऽत्माइतिगम्यते इतिपूर्वपक्षाशङ्कायामिदमाहतद्गुणसारत्वात्तु इत्यादि तुशब्दश्चोद्य व्यावर्तयति तद्गुणसारत्वात् विज्ञानगुणसारत्वादात्मनोविज्ञानमितिव्यपदेशः विज्ञानमेवास्यसारभूतोगुणः प्राज्ञवत् अर्थात् यथाप्राज्ञस्यानन्दस्सारभूतोगुणः इतिप्राज्ञानन्दशब्देन व्यपदिश्यते। यदेषआकाशआनन्दोनस्यात् आनन्दोब्रह्मेतिव्यजानादितिप्राज्ञस्य आनन्दः सारभूतोगुणः सएकोब्रह्मणआनन्दआनन्दंब्रह्मणोविद्वान्नबिभेतिकुतश्चनेतियथावा सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेतिविपश्चितः प्राज्ञस्य ज्ञानशब्देनव्यपदेशः प्राज्ञस्यज्ञानंसारभूतोगुणइतिविज्ञायते ॥

अथ भाषानुवादः ॥

तद्गुणसारत्वात्तुतद्व्यपदेशःप्राज्ञवत् ॥ २९ ॥

वही (विज्ञान ही) गुणसार होने से उस का कथन है प्राज्ञ के समान ॥

विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानं यज्ञं तनुते ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्मलम् ॥

अर्थ—विज्ञान में स्थित हुआ विज्ञान यज्ञ को करता है विज्ञानस्वरूप अत्यन्त निर्मल है इत्यादि श्रुति वाक्यों में विज्ञान ही (बुद्धि ही) आत्मा है यह कहा है इस से आत्मा ज्ञाता नहीं है यह सिद्ध होता है इस पूर्व पक्ष की शङ्का के उत्तर में यह कहा है कि वही गुणसार होने से उस का कथन है अर्थात् विज्ञान नाम कथन है अर्थात् विज्ञान नाम से आत्मा कहाजाता है प्राज्ञ के समान अर्थात् जैसे आनन्द गुणसार होने से प्राज्ञ परमात्मा आनन्द शब्द से कहा जाता है या कहागया है यथा—

यदेषआकाशआनन्दोनस्यात् ॥

अर्थ–यह आकाश आनन्द न होता। इत्यादि तथा अन्य श्रुति में ऐसा वर्णन है ॥

आनन्दोब्रह्मव्यजानात् ॥

अर्थ–आनन्द ब्रह्म को जाना । तथा–

आनन्दंब्रह्मणोविद्वान् न बिभेति कुतश्चन ॥

अर्थ–आनन्द ब्रह्म को जाननेवाला किसी से भय को नहीं प्राप्त होता है इत्यादि । अथवा जैसे–

सत्यज्ञानमनन्तंब्रह्म ॥

अर्थ–सत्य ज्ञान रूप अनन्त ब्रह्म है। इस श्रुति में प्राज्ञ के ज्ञान गुणसार होने से प्राज्ञ को ज्ञान शब्द से कहा है ऐसेही विज्ञानगुणसार होने से जीव को विज्ञान शब्द से कहा है यह ज्ञात होता है ॥

यावदात्मभावित्वाच्चनदोषस्तद्दर्शनात् ३०

विज्ञानस्ययावदात्मभाविधर्मत्वेनतद्व्यपदेशोनदोषः तथा च खण्डादयो यावत्स्वरूपभाविगोत्वादिधर्मशब्देनगौरितिव्यपदिश्यमानादृश्यते स्वरूपनिरूपणधर्मत्वादित्यर्थःचकारोज्ञानवदात्मनोपिस्वप्रकाशत्वेनज्ञानमितिव्यपदेशो न दोषइतिसमुच्चिनोति यद्यात्माज्ञस्वभावस्स्यात् विज्ञानमेवस्वसारभूतोगुणोवास्यात् तर्हिसुषुप्त्यादिषुनस्यज्ञानाभावोनस्यात् सुषुप्त्यादिषुज्ञानाभावाज्ज्ञानस्यस्वरूपानुबन्धिधर्मत्वमित्याशङ्कायाउत्तरमाह ।

भाषानुवाद

यावदात्मभावित्वाच्चनदोषस्तद्दर्शनात् ॥३०॥

आत्मा के रहने तक रहने वाला होने से दोष नहीं है यह देखने से ३०

विज्ञान के यावदात्मभावी धर्म होने से आत्मा को विज्ञान नाम से कहना दोष नहीं है ऐसा लोक में भी देखा जाता है फिर खण्डादि यावत् स्वरूपभावी (स्वरूप रहने तक रहने वाले) गोत्व आदि धर्मशब्द से गौ ऐसा कहे जाते हैं । जो आत्मा ज्ञान स्वभाव होता अथवा विज्ञान ही इस का सार गुण होता तौ सुषुप्ति आदि में उस के ज्ञान का अभाव न होता सुषुप्ति आदि में ज्ञान के अभाव से ज्ञान स्वरूप ज्ञान संयुक्त ही सदा रहना आत्मा का गुण वा धर्म नहीं है इस शङ्का का उत्तर वर्णन करते हैं ३०

पुंस्त्वादिवत्त्वस्यसतोऽभिव्यक्तियोगात् ३१

तुशब्दश्चोक्तशङ्कानिवृत्यर्थः नेदृशीशङ्का कर्तव्या कुतः अस्यज्ञानस्य सुषुप्तिप्रलययोर्विद्यमानस्य प्रबोधप्रसवयोरभिव्यक्तिसम्भवात्स्वरूपानुबन्धिधर्मत्वोपपत्तिः । पुंस्त्वादिवत्यथापुंस्त्वादीनिबीजात्मनाविद्यमानान्येववाल्यादिष्वनुपलभ्यमानानि अविद्यमानवदभिप्रेयमाणानि यौवनादिष्वाविर्भवन्ति सप्तधातुमयत्वंहि शरीरस्य स्वरूपानुबन्धि वाल्यावस्थायांविद्यमानपुंस्त्वस्ययुवत्वेऽभिव्यक्तिवत्सुषुप्तौविद्यमानस्यज्ञानस्य प्रबोधेऽभिव्यक्तिर्भवति एवंप्रलयमूर्छावस्थयोर्विद्यमानस्य सृष्टिस्वास्थ्ययोरुपलब्धिर्ज्ञातव्येतिअतोज्ञातृत्वमेवात्मनःस्वरूपंज्ञाताणुपरिमाणश्चायमात्मेत्यवधेयम् अन्यथाज्ञानमात्रत्वपक्षे सर्वगतत्वपक्षे च दोषोनुमीयते को दोषः तमाह—

अथ भाषानुवादः

पुंस्त्वादिवत्त्वस्यसतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥३१॥

पुंस्त्वादि के समान इस विद्यमान की प्रकटता होने के योग से ॥३१॥

यह शङ्कायुक्त नहीं है क्योंकि सुषुप्ति व प्रलय में विद्यमान ही ज्ञान की जाग्रत् अवस्था में व सृष्टि समय में प्रकटता सम्भव होने से ज्ञान का यावदात्मभावी होना सिद्ध होता है पुंस्त्वादि के समान अर्थात् जैसे पुंस्त्व आदि बीज रूप से वाल्य अवस्था आदि में विद्यमान ही रहते हैं परन्तु ज्ञात नहीं होते वह विद्यमान ही अविद्यमान के समान समझे गये यौवन (युवावस्था वा जवानी) में प्रकट होते हैं सप्तधातुमय होना शरीर के स्वरूप का सम्बन्धी है पुंस्त्व जो वाल्य अवस्था में विद्यमान रहता है उसकी प्रकटता युवत्व (जवानी) में होने के समान सुषुप्ति में विद्यमान की जागने में प्रकटता होती है ऐसे ही प्रलय व मूर्छा अवस्थाओं में विद्यमान ज्ञान की सृष्टि वा स्वास्थ्य में प्रकटता जानने योग्य है इस से आत्मा का ज्ञाता होना ही स्वरूप है ज्ञाता व अणु परिमाण यह आत्मा है यही निश्चय करना चाहिये अन्यथा ज्ञान मात्र होने के पक्ष में और सर्वव्यापक होने के पक्ष में दोष होना अनुमान किया जाता है क्या दोष है वह वर्णन करते हैं ।

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमोवान्यथा ३२

अन्यथासर्वगतत्वपक्षेतस्यज्ञानमात्रत्वपक्षे चनित्यमुपलब्ध्यनुपलब्धीसहैवप्रसज्येयाताम् अन्यतरनियमोवाउपलब्धिरेववानित्यंस्यादनुपलब्धिरेववाएत-

दुक्तं भवति लोके तावत् वर्त्तमानयोरात्मोपलब्ध्यनुपलब्ध्योरयं ज्ञानात्मा सर्वगतो हेतुः स्यात् उपलब्धिरेव वा अनुपलब्धिरेव वा उभयहेतुत्वे सर्वदा सर्वत्रोभयं प्रसज्येत यद्युपलब्धिरेव सर्वस्य सर्वदा सर्वत्रानुपलम्भो न स्यात् अथानुपलब्धिरेव सर्वदा सर्वत्रोपलब्धिर्न स्यात् अस्माकं मते शरीरस्यान्तरेव वा स्थितत्वादात्मनस्तत्रैवोपलब्धिर्नान्यत्रेति व्यवस्थासिद्धिः करणाय तस्योपलब्धेरपि सर्वेषामात्मनां सर्वगतत्वेन सर्वैः करणैः सर्वदा संयुक्तत्वात् अदृष्टादेरप्यनियमादुक्तदोषः समानः इति ननु जीवपरमात्मनोर्भेदस्वीकारे नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता इत्याद्यद्वैतवादिन्यः श्रुतयो मिथ्या स्युरिति चेन्नैवं चैतन्यजातिपरत्वेनात्मपरमात्मनोरेकत्वानुसंधानेनात आत्मनोऽन्यः कश्चित् श्रोता मन्ता विज्ञाता नास्तीत्युक्तं यद्वा अतः परमात्मनोऽधिकः कश्चिच्छ्रोता मन्ता विज्ञाता नास्तीत्याशयः जातिपरत्वेनैकत्वस्वीकारेणाद्वैतवाक्ये दोषः । नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात् ॥ अ० १ सू० १५४ इति सांख्यसूत्रप्रामाण्यात् चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिरिति वेदान्तसूत्रस्यैव प्रामाण्याच्च इति संक्षेपत उपलक्षणार्थं वेदान्तस्य विशेषसूत्राणि व्याख्यातानि एवं यत्र संशयो भवेत् तद्विषये त्वार्षग्रन्थभाष्यवृत्त्युक्तवाक्यैरार्षमतानुयाय्यन्यपक्षपातरहितसदाशयनिर्मितग्रन्थवाक्यैर्वा स्वबुद्धिलोपिमस्य विचारतन्तत्त्वार्थो मृग्यः विशिष्टाद्वैतपरब्रह्मसूत्रवृत्तिनिर्मातृमहर्षिबौधायनमतविरुद्धपूर्वापरस्य विचाराकर्त्तीमत्सूत्रकाराशयस्यापि विरुद्धत्वावगमादद्वैतमतं मन्तव्यमित्यवधेयम् वेदान्तविषयेऽतोऽधिकमस्मत्कृतब्रह्मसूत्रभाष्ये द्रष्टव्यम् अत्र सर्ववेदान्तवाक्याशयलक्षणे इदमन्यद्वेदान्तभाष्यं स्यात् अतः पूर्वाचार्य्यमतान्यनुसृत्य स्वबुद्धिविचारतो महर्षिबौधायनमतानुसारेण सत्यत्वमवधार्य वेदान्तभाष्यनिर्माणानन्तरं विद्यार्थिभ्य उपलक्षणार्थं कतिपयसूत्राणामर्थ एवात्र वर्णितः पूर्वोक्तग्रन्थे षड्दर्शनसूत्राणां भाष्याणि प्रागेव निर्मितान्यतोऽधिकविस्तरो न कृतः । इति शम् ॥

इति श्रीमत्पण्डित प्रभुदयालुनिर्मिते समीक्षाकरे ब्रह्मसूत्रविशेषव्याख्याने पञ्चमोऽध्यायः ॥

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः दैवं प्रधानमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं विहाय कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥

अथ भाषानुवादः

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमोवाऽन्यथा ॥३२॥

अन्यथा मानने में नित्य उपलब्धि वा अनुपलब्धि होने का प्रसङ्ग होगा अथवा दो में से एक का नियम होगा ॥३२॥

अन्यथा अर्थात् आत्मा के सर्वगत (व्यापक) होने के पक्ष में और ज्ञानमात्र होने के पक्ष में साथ ही नित्य उपलब्धि नित्य अनुपलब्धियों के होने का प्रसङ्ग होगा अथवा दो में से एक के होने का नियम होगा अर्थात् उपलब्धि ही नित्य होगी वा अनुपलब्धि ही नित्य होगी। प्रथम लोक में वर्तमान जो उपलब्धि वा अनुपलब्धि हैं उन का सर्वव्यापक आत्मा हेतु होगा अथवा उपलब्धि ही वा अनुपलब्धि ही का। दोनों हेतु होने में सर्वदा सर्वत्र दोनों होंगे यदि उपलब्धि ही मात्र होगी तो सब को सदा सर्वत्र अनुपलब्धि न होगी अथवा अनुपलब्धि ही होगी तो सब को सदा सर्वत्र उपलब्धि न होगी ऐसा होने में अवस्था भेद की सिद्धि न होगी हमारे मत में शरीर के भीतर भी आत्मा की स्थिति होने में शरीर ही में उपलब्धि होती है अन्यत्र नहीं होती इस से व्यवस्था (अवस्था भेद) की सिद्धि है अन्तःकरण के आधीन उपलब्धि होने में भी सब आत्माओं के सर्वव्यापक होने में सब के अन्तःकरणों से सब के सर्वदा संयुक्त होने से और अदृष्ट आदि से भी नियम न होने से उक्त दोष पूर्व ही के समान हैं। जो यह शङ्का होवे कि जीव व परमात्मा के भेद मानने में।

नान्योअतोऽस्तिद्रष्टाश्रोतामन्ताविज्ञाता ॥ इत्यादि।

अर्थ—इस से अन्य कोई देखने वाला सुनने वाला मानने वाला जानने वाला नहीं है। इत्यादि अद्वैत प्रतिपादन करने वाली श्रुतियां मिथ्या होंगी तो ऐसी शङ्का करना युक्त नहीं है अद्वैत श्रुति चैतन्य जाति एक होने के आशय से आत्मा व परमात्मा की एकता का अनुसन्धान कर के इस आत्मा से अन्य वस्तु कोई द्रष्टा श्रोता मन्ता व विज्ञाता नहीं है यह कहा है अथवा ऐसा अर्थ ग्राह्य है कि इस से अर्थात् इस सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमात्मा से अधिक कोई द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता नहीं है जातिपरत्व से एकता स्वीकार करने में अद्वैत वाक्य में दोष नहीं प्राप्त होता और जातिपर होने से अद्वैत श्रुति में विरोध नहीं है ऐसा सांख्य दर्शन में अ० १ सू० १५४ में कहने के प्रमाण से और स्वयं

महात्मा वेदान्तसूत्रकार ने ज्ञान तन्मात्र से तदात्मक होने से एकता का कथन है ऐसा औडुलोमि आचार्य मानते हैं ऐसा वेदान्त दर्शन के अ० ४ पा० ४ सू० ६ में कह कर अपनी भी सम्मति इस के अनुकूल विज्ञापित किया है इस से चेतन सजातीयभाव से एक मान के एकता का कथन है यह संक्षेप से उपलक्षण के लिये वेदान्त के विशेष सूत्रों का व्याख्यान किया गया है ऐसे ही जहां जहां संशय होवै उस विषय में आर्षग्रन्थ भाष्य व वृत्तियों में कहे हुये वाक्यों से और अपनी बुद्धि से भी अच्छे प्रकार से विचार करके तत्व का खोज करना चाहिये विशिष्टाद्वैतपर ब्रह्म सूत्र वृत्ति के निर्माता महर्षि बौधायन के मत से विरुद्ध होने से व पूर्वापर अच्छे प्रकार से विचारने से श्रीमान् सूत्रकार के आशय से विरुद्ध होना सिद्ध होने से अद्वैत मत सत्य नहीं है वेदान्त विषय में इस से अधिक हमारे वर्णन किये हुये वेदान्तभाष्य में देखना चाहिये इस में सब वेदान्तवाक्यों का आशय लिखने से यह अन्य वेदान्तभाष्य हो जाता इस से पूर्वाचार्य्यों के मत अनुसार और अपनी बुद्धि के विचार से महर्षि बौधायन के मत के अनुसार तत्व का निश्चय करके वेदान्तभाष्य के निर्माण के पश्चात् विद्यार्थियों के लिये उपलक्षण के अर्थ कुछ थोड़े सूत्रों ही का अर्थ यहां वर्णन किया है पूर्वोक्त ग्रन्थों में उक्त दर्शनों के सूत्रों के भाष्य पहले ही निर्माण किये गये हैं इस से यहां अधिक विस्तार नहीं किया शमस्तु।

श्रीमत्प्यारेलालात्मज बांदा मण्डलान्तर्गत तेरहीत्याख्यग्रामनिवासि
पण्डित प्रभुदयालु निर्मिते समीक्षाकरे ब्रह्मसूत्रविशेषाणां
व्याख्याने पञ्चमोऽध्यायः समाप्तश्चायंग्रन्थः ॥

वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड कार्यालय—सदर मेरठ के विक्रयार्थ पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

वैदिक पुस्तक प्रचारक फ़ण्ड से छपी पुस्तकें—हिन्दु आर्य और नमस्ते का अन्वेषण मूल्य)॥। (पं० लेखराम कृत) क्या स्वामीदयानन्द मक्कारथा ?)॥। पुरुषसूक्त)॥ मनुष्यसमाज)॥ मनुष्य जन्म की सफलता)॥ श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवनचरित्र)॥ क्रिश्चीयनमत दर्पण)॥ ईसाईमतखण्डन १ भाग)। दूसरा)। ईसाईमतलीला)। महाशङ्कावली १ भाग)। दूसरा भाग)। नीतिशिक्षावली)। सुशीलादेवी)। रामायण का आल्हा)। पं० रामचन्द्र वेदान्ती का उत्तर)। शिवलिङ्गपूजाविधान)। श्रीरामजी का दर्शन)। कलियुग लीला काशीमहात्म)। नित्यकर्मविधिः)। पुराण किसने बनाये, शङ्करानन्द के अनमोलउपदेश डेवीस की राय आधा २ पैसा ॥

अन्य पुस्तकें—खेतीविद्या के मुख्य सिद्धान्त ॥=) वेदान्तप्रदीप ॥) वैद्यानन्दप्रकाश ॥) चिकित्सासिन्धु २) लण्डनयात्रा ।-) श्रीछत्रपति शिवा जी का जीवनचरित्र ।) नारायणी शिक्षा १।) भास्करप्रकाश १ खण्ड ।=) श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य ।≡) संस्कृत की प्रथमपुस्तक)॥। द्वितीय -)। तृतीय =)॥ चतुर्थ ॥) चारों की जिल्द ।॥-) विश्वकर्माप्रकाश १।) वैदिकधर्मप्रचार ॥।) स्वधर्मरक्षा ।) आर्यसमाजपरिचय ।) भगवद्गीताभाष्य १।।) वीर्य्यरक्षा ≡) (स्त्री शिक्षा की पुस्तक) स्त्रीधर्मनीति १) भारत की विख्यात रानियों के चरित्र ॥) सीताचरित्ररत्नावल १ भाग ।॥) (भजनों की पुस्तक) आर्यसंगीत पुष्पावली ॥) सभाप्रश्न ।)॥ प्रमोदयभजनावली ≡) भजनामृतसरोवर =) संगीत रत्नाकर =) संगीतसुधासागर -) भजनेन्दु -) (उत्तम देखने योग्य उपन्यास) दिवनिवारण ॥। सुवर्णलता ॥।) मधुमालती ॥।) चितौड़ की चातकी ॥। अमलावृत्तान्तमाला ॥।) इला ॥=) प्रमिला ॥=) जया ॥) अकबर ॥) अद्भुत लाश ।=) चन्द्रकला ।) संसारदर्पण २) वेश्यानाटक ।)॥ अंगरेजी की सीढ़ी।=) अज्ञाननिवारण -)॥ वैदिकदेवपूजा -)॥ ईश्वर और उसकी प्राप्ति -) हारमोनियम गाईड १ भाग ।=) दूसरा ।=) लेखदीपिका ।) स्वास्थ्यरक्षा ॥)

हमारे यहां श्रीस्वामीदयानन्द सरस्ती जी महाराज कृत पं० भीमसेन जी कृत पं० तुलसीराम जी कृत स्वर्गवासी पण्डित लेखराम जी कृत उर्दू पुस्तकें, तथा पं० कृपाराम जी के उर्दू ट्रेक्ट और मुं० चिम्मनलाल जी कृत आदि पुस्तकें हैं डाक व्यय सब को अलग पड़ेगा ॥

(११) योगराज गुगुल वटी १०० वटी का मू० १)–इस के सेवन से उदर के सब रोग, पाण्ड रोग, वात, कफ के रोगों पर सब प्रकार का प्रमेह पेचिश आदि शीघ्र आराम होते हैं।

(१२) सुधांजन सुरमा तोला ।।) आज कल बारीक अक्षर पढ़ने वालों को तथा नेत्र के सब रोगों को अति लाभदायक है।

(ऊपर लिखी सर्व औषधियों का बड़ा सूचीपत्र तथा खाने की विधि का पत्र अलग दवाई के साथ मिलता है)

मिलने का पता-मेनेजर भारतोद्धारक सदर-मेरठ

अशुद्धमुद्रितशब्दानां शुद्ध्यर्थमिदं शुद्धिपत्रम्।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१	पूर्व्यै	पूर्त्यै
३	३०	तद्भक्ष्यते	तदभिव्यङ्क्ष्यते
६	१२	अवगच्छन्ति	अवगम्यते
७	२१	इस में	इस से
९	१७	नावइति	भाव इति
१०	११	प्रत्यय	प्रलय
१२	१३	अनेकद्रव्यत्वं	अनेकद्रव्यवत्त्वेन
१४	२५	षडेपदार्थो	षडेवपदार्थो
१४	२८	कौर	और
१५	२३	उपस्कार निर्मात्रा	उपस्कारनिर्मात्रा वृत्तिकर्त्रा च
१८	१२	सामात्यतः	सामान्यतः
२०	९	नहीं होत	नहीं होता
२१	१८	नहीं	नहीं है
२२	६	धनापहारत्वकथयात्	धनापहारत्वकथनात्
२२	२७	अपहर्तुर्ये	अपहर्तुं ये
२९	६	धार्मिक में विरुद्धों का	धार्मिक से विरुद्धों का
२९	१२	कि कार्यं	किं कार्यं
३०	९	स्वकार्येति	स्वीकार्येति
३०	२८	मत्राणि	सूत्राणि
३२	१७	सत्वान्नित्यत्वाद्युपासा	सत्त्वानित्यत्वाद्युपासा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४	१७	मित्यऐश्वर्यवाम्	मित्यऐश्वर्यवान्
३६	३	व्याप्यत्वाऽसिद्ध्य	व्याप्यत्वाऽसिद्ध्या
३९	११	विज्ञान वह	विज्ञान है वह
३९	२८	उस के प्रत्यक्ष	उन के प्रत्यक्ष
४२	११	सिद्धिप्रदर्शनार्थवाह	सिद्धिप्रदर्शनार्थमाह
४४	२४	यं आत्माऽपहतपाप्मा	य आत्माऽपहतपाप्मा
४५	२३	२५ अपिस्मर्य्यते २२	२२ अपिस्मर्य्यते २३
४६	१४	शूद्रेत्यामंत्रप्रतिस्म	शूद्रेत्यामंत्रयति स्म
५०	५	नेश्वरस्येदृशेपक्षपातेर्षाः	नेश्वरस्येदृशपक्षपातेर्ष्यो
५३	११	इतिश्रुतिवाक्य	इस श्रुतिवाक्य
५३	१३	फला हुआ	फूला हुआ
५४	१५	प्राप्त होता	प्राप्त होता है
५४	१७व१८	अनुमान	अनुभान
५४	२४	पूर्व हीं होने से	पूर्व ही वर्णित होने से
५४	२७	अनुमान	अनुभान
५५	२५	जान श्रुति में हंसों	जानश्रुति हंसों
५७	२२	वर्णन न होने से	वर्णन होने से
५९	२९	कि उत्तम	क्योंकि उत्तम
६०	३०	यदा	यही
६१	५	नहीं होता	नहीं हो सक्ता
६१	२६	अनधिकारत्व व अधिकार को	अनधिकारत्व को
६२	१	श्लोक ३९	श्लोक ३८
६२	११	कहा	कहा है
६५	१०	उत्क्रन्ति	उत्क्रान्ति
६५	१८	यह निश्चित	तो यह निश्चित
६८	१३	वाच्यं मनसः	वाच्यस्य मनसः
७२	१	वाच्य होने	वाच्य होने से
७३	१४	दोष प्रतिभास	दोष का प्रतिभास
७३	१५	(प्रतिभाषित होना)	(प्रतिभासित होना)
७८	१३	भीतर भी	भीतर ही

समाप्तमिदं शुद्धिपत्रम् ॥